मानव मन्दिर

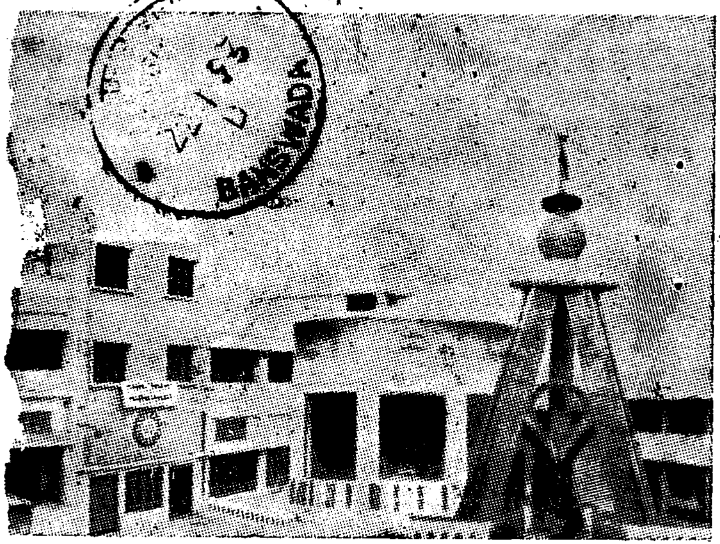

BANSWADA

ीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सुतैहरी रोड, होशियारपुर

द्वारा अमूल्य भेंट

रम सन्त परम दयाल पं. फकीर चन्द जी महाराज

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Ravi Nanda
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehti Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Ravi Nanda hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and Published by : Ravi Nanda at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग

14-2-93 प्रात: ८-30 बजे होगा। 5 बजे सायं : निवास श्री देशराज शर्मा, नं. 872 सैक्टर 7, पञ्चकुल्ला निकट

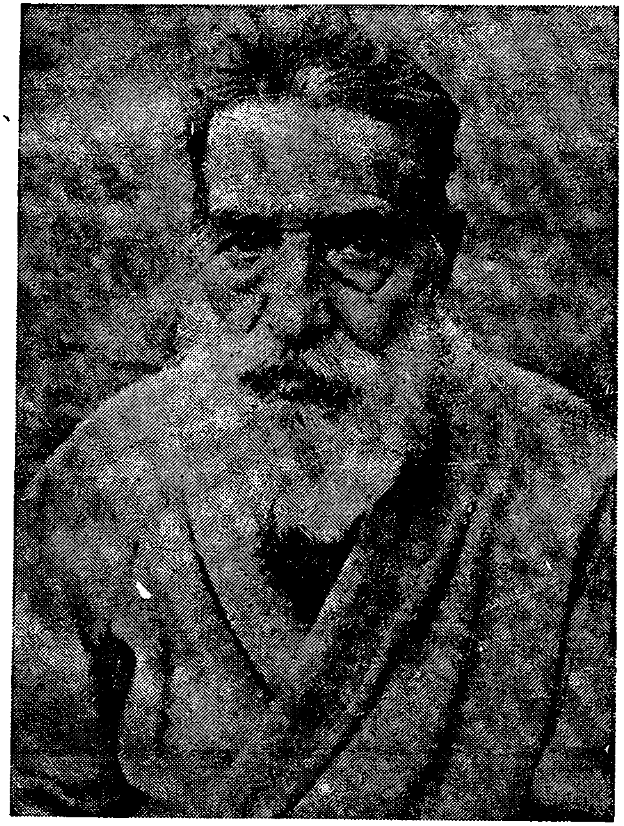

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

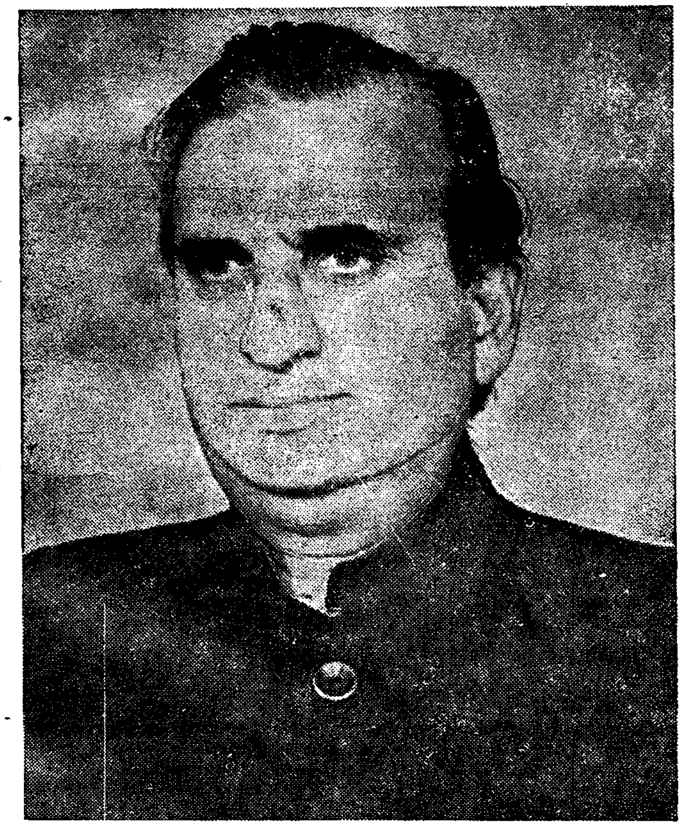

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक---

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
श्री रवि नन्दा

वर्ष 19	सोमवार 11 जनवरी, 1993	संख्या 9

मौत और ज़िन्दगी

परमसन्त पूर्णधनी मालिके कुल हज़ूर परमसंत दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

सत्संग वैदिक धर्म की नज़र से

(राधास्वामी धाम जुलाई 4, 1930)

जो मरता है, वही जीता है और जो जीता है, वही मरता है। मरना और जीना दोनों प्रकृति में साथ-साथ चलते हैं और एक दूसरे के साथी हैं। मौत के बिना ज़िन्दगी नहीं और ज़िन्द ी के बिना मौत नहीं। जीना मरने की निशानी है और मरना जीने की शान है। जो मरता नहीं, उसे ज़िन्दगी का कोई अधिकार नहीं और जो जीता नहीं उसे मरने के स्वाद का पता नहीं चल सकता।

ज़िन्दगी और मौत दोनों ही रसीली हालतें हैं। यह सोचना कि इनमें से एक हालत अच्छी है और दूसरी बुरी, बिलकुल ही ग़लत है। अगर स्वाद और खुशी है, तो दोनों में ही है अगर नहीं तो किसी में भी नहीं है। मेरा विचार है कि लज़्ज़त से खाली एक भी नहीं।

हम मरने के लिए जीते हैं, और जीने के लिए मरते हैं। यदि जीवन कर्म के लिए है, तो मौत कर्म के भोग भोगने के लिए। हर काम के बाद आराम की हालत आती है, इसलिए ही तो काम करने के बाद, हर एक व्यक्ति को आराम करने की इच्छा होती है, आराम करने की सूझती है। जिन्दगी में इसलिए जब आदमी काम करते करते थक जाता है, तो उसे आराम के लिए मौत की ज़रूरत पड़ती है, क्योंकि मौत आराम तथा आनन्द की हालत है।

जिन्दगी और मौत के बीच जो अन्तर हमको दिखाई देता है वह यह है कि जिन्दगी में मशहूरी, काम में लगाव और हलचल होती है, जबकि मौत में, बेख़बरी, बेकारी और सुनसान होता है, हलचल नहीं होती। परन्तु दोनों का ही होना ज़रूरी है। इस बात पर पूरा - 2 ध्यान देने से ही समझ में आ सकेगा कि मौत क्या है और मौत का मतलब क्या है।

जिन्दगी को ज़ाहिर करने के लिए जिन्दगी और मौत दोनों का ही होना ज़रूरी है। जिन्दगी और मौत एक दूसरे के उलट हैं, परन्तु ऐसा होते हुए भी, दोनों का होना ज़रूरी है। यदि मौत न हो तो जिन्दगी जिन्दगी नहीं कहलाएगी और यदि जिन्दगी न हो तो मौत कैसे आएगी? प्रकाश के साथ छाया और विष के साथ अमृत लगा रहता है। कहने का मतलब यह है कि जिन्दगी की कोई भी अवस्था ऐसी नहीं है, जो अपनी उलट हालत से ख़ाली हो। उन उलट हालतों का ज्ञान भी जिन्दगी में ही होता है। अगर जिन्दगी कोई चीज़ है, तो उसका उलट मौत है और मौत का ज्ञान भी हमको जिन्दगी में ही होता है, मौत में मौत का ज्ञान

नहीं होता।

ज़िन्दगी द्वन्द्व के ज्ञान की हालत का नाम है और मौत द्वन्द्व के गुम होने का नाम है। संसार में जो कुछ भी तकलीफें होतीं हैं वे सब द्वन्द्व के ही कारण से होती हैं। मौत में,द्वन्द्व के गुम हो जाने के कारण किसी को भी दु:ख का ज्ञान नहीं होता। इससे तो यही साबित होता है कि मौत खुशी की हालत है, जिसमें इन्सान तमाम दु:ख और मुसीबतें भूल जाता है। ज़िन्दगी तो खुशी का अंशमात्र ही है, ज़िन्दगी में अगर खुशी मिलती है, तो टुकड़े - २ होकर मिलती है, पूरी तरह से नहीं मिलती। संसार में पूर्ण ख़ुशी तो आज तक किसी को भी ज़िन्दगी में रहते हुए नहीं मिली और न कभी मिलेगी। यह प्रकृति का अटल नियम है यदि पूर्ण खुशी किसी को मिलती है या मिल सकती है, तो वह केवल मौत की हालत में ही सम्भव है।

ज़िन्दगी में याद-दाश्त की ताकत प्रबल रहती है और ज्ञान आर अज्ञान सुख, दु:ख, घृणा और प्यार, सबकी याद दिलाती रहती हैं। मौत में यह हालत नहीं होती। मौत में, न कहीं याद-दाश्त की ताकत होती है और न ही द्वन्द्व का ज्ञान रहता है। ये सब समाप्त हो जाते हैं। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि मौत कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जिससे इन्सान को घबराना या डरना चाहिए और उससे बचकर रहना चाहिए।

ज़िन्दगी चूंकि द्वन्द्व के ज्ञान का दायरा है, इसलिए उसके प्रगट करने की दो हालतें हैं। एक का नाम लोक है और दूसरे का नाम परलोक। यह 'लोक' शब्द संस्कृत धातु (देखने)

से निकला है। जो चीज़ देखी जाय, देखने में आए, देखी जाती है और देखने में आ सकती है, उसका नाम लोक है। लोक की दो हालतें हैं---एक जाग्रत और दूसरी स्वप्न। जाग्रत स्थूल और स्वप्न सूक्ष्म है। दोनों हालतों में जाग्रत और स्वप्न का ज्ञान हुआ करता है। जाग्रत और स्वप्नावस्था की दृष्टि से एक लोक शारीरिक है और दूसरा मानसिक। वही दोनों दो लोक हैं। इनमें से एक लोक है और दूसरा परलोक। जाग्रत अवस्था लोक है और स्वप्नावस्था परलोक है। यह तो आम आदमियों की बुद्धि के अनुसार है, परन्तु खास तौर पर जिन हालतों से ज़िन्दगी गुज़रती है, वह सात लोक हैं। संस्कृत भाषा में वे यह हैं :---

(1) भूर्लोक,
(2) भुवर्लोक,
(3) स्वर्लोक,
(4) महर्लोक,
(5) जनः लोक,
(6) तपः लोक और
(7) सत्य लोक।

भूर्लोक से ले कर सत्यलोक तक जाग्रत हालत की मंजिलें हैं और इनके साथ - साथ मिली हुई हालत में स्वप्न का दायरा भी रहता है और जीवों को इन सात स्थानों के जाग्रत और स्वप्न का ज्ञान होता है। जिस प्रकार जाग्रत के सात दायरे कायम किए गए हैं, उसी प्रकार, स्वप्न के भी सात दायरे कायम किए जा सकते हैं, जो उनके उलट यानि

द्वन्द्व होंगे और इन दोनों का ज्ञान भी हुआ करता है। अब विचार करो कि जाग्रत अवस्था के सात दायरे क्या - 2 हैं ? इनका पता, उन शब्दों पर बार - 2 गौर करने पर ही लगेगा या जिस प्रकार के लोग उनके अन्दर रहते हैं, उनके नाम और निशान पर गौर करने से उनका ज्ञान होगा।

उदाहरणतया :--

(1) भूर्लोक, पृथ्वी (2) भुवर्लोक, यह सूर्यलोक तथा पृथ्वी के बीच का हिस्सा है (3) स्वर्लोक, यह इन्द्रस्थान या इन्द्र के रहने की जगह है यह सूर्य और ध्रुव तारा के मध्य में है (4) महर्लोक, इस लोक में ब्रह्मा के साथ रहने वाले भृगु जी जैसे इन्सान रहते हैं, (5) जनः लोक, यह ब्रह्म का लोक है और यहां के रहने वाले, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इत्यादि हैं। (6) तप; लोक, इस लोक में वैरागियों के किस्म के देवता रहते हैं। (7) सत्य लोक, इसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं। हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार, जो इस लोक में पहुंच गया, वह जन्म मरण से मुक्ति पा जाता है।

हमेशा इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि यह लोक और परलोक कुछ नहीं हैं सिर्फ खास - खास प्रकार की ज्ञान की हालतें हैं और इन्सान इनका वारिस है। यहां तक इस ज्ञान के साथ - साथ उसके द्वन्द्व की हालत मौजूद रहती है उसे तुम परलोक या इनकी सूक्ष्म हालत कह सकते हो।

ज़िन्दगी और मौत दो हालतें हैं। ज़िन्दगी की हालत द्वन्द्व की है जिसमें जाग्रत और स्वप्न दोनों मौजूद होते हैं,

जिन्हें हम लोक और परलोक के नाम से पुकारते हैं। मौत का दायरा इनके ऊपर आता है और वही असल में अद्वैत की जगह है, जहाँ दो पने का भाव पैदा नहीं होता। इसको समझाने के लिए हमको बेकार हा तीसरी हालत की तरफ़ ध्यान देना पड़ता है, जिसे हम सुषुप्ति कहते हैं। यह सुषुप्ति हमारी छोटी मौत है, रोज़ - २ की मौत है क्योंकि हम रोज़ गहरी नींद में जाते हैं। यह हालत शारीरिक दायरे के छोड़ने की हालत से मिलती जुलती है।

ग़ौर से सोचो तो मालूम होगा कि जाग्रत और स्वप्न दोनों ही ज़िन्दगी हैं और सुषुप्ति मौत है, तभी हम इसे छोटी मौत भी कह देते हैं, बड़ी मौत तो शरीर छोड़ने के बाद ही आती है। अब आप ही फ़ैसला करो कि मौत अच्छी चीज़ है या बुरी, अच्छी हालत है या बुरी ? हम तो मौत को अच्छी ही हालत कहते हैं और उसकी अच्छाई का गीत गाते रहते हैं। जो लोग मौत को बुरा मानते हैं, मौत से डरते हैं, मेरे विचार में उन्होंने शायद कभी मौत पर ग़ौर से विचार नहीं किया। जी तो यही चाहता है कि हम इस विषय पर बोलते ही चले जायें और अपने कुछ और विचार आपको ज़ाहिर करें, परन्तु अभी के लिए यह शायद पर्याप्त है। कबीर साहिब कहते हैं :--

जा मरने से जग डरे, मोहे बड़ा आनन्द।
कब मरूं कब पाइहौं, पूरण परमानन्द ।।

❉ ❉ ❉

गुरु महिमा

(झावाल होशियारपुर में 30-11-69 को परमसन्त परमदयाल पण्डित फ़कीर चन्द जी महाराज का सत्संग)

गुरु का रूप

लाई हयात आए, कज़ा ले चली चले ॥
अपनी खुशो न आए, न अपनी खुशी चले ।

दाना पानी या कर्म का चक्कर जीव को फिराता रहता है। इस कर्म के सिलसिले में कुदरत का कोई न कोई उद्देश्य होता है। संसार का जो चक्र चल रहा है, इसमें दो प्रकार के कर्म होते हैं---एक तो भगवान के सन्सार के कर्म और दूसरे हर जीव के अपने कर्म। भगवान का जो कर्म है, उसका कोई प्रयोजन है, कोई उद्देश्य है और हम व्यक्ति जो कर्म करते हैं उनका भी कोई प्रयोजन है। मैं अपने आप से पूछता हूं, "फ़कीर! तू जगह - 2 सत्संग देता फिरता है, इसमें तेरा क्या प्रयोजन है ?"

किसी का सत्संग कराने का उद्देश्य या प्रयोजन होता है कि वह धन कमाए, नाम कमाए, शोहरत पाए, बहुत से

चेले बनाए,बड़े - 2 डेरों का निर्माण करे। मेरा उद्देश्य यह सब नहीं है। बचपन से ही मुझे मालिक को मिलने की तड़प थी। सात वर्षों की आयु से ही मैं मालिक की खोज में लग गया। कई वर्षो की खोज के बाद मेरा भाग्य, मालिक की मौज मुझे 1905 में एक दृश्य द्वारा दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज के चरणों में ले गई। मैं तो था ईश्वर या परमात्मा का परमभक्त, परन्तु दाता से मुझे राधास्वामी मत, या गुरुमत या सन्तमत, या कबीरमत की शिक्षा मिली। मैं पहले पहल जो सत्संगियों से बातचीत करता था या इस मत के विषय में जो पढ़ता था, मुझे समझ में नहीं आता था। परन्तु मेरा अपने इष्ट दाता दयाल के प्रति अडिग विश्वास था। उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। मैंने उस समय यह प्रण किया था कि इस मार्ग पर चलने के बाद, इसे ठीक - 2 अनुभव करने के बाद जो ज्ञान मुझे प्राप्त होगा, वह मैं दुनियां को असली रूप में बता जाऊंगा। वह मेरी इच्छा या वासना ही, मुझ से कर्म कराए चली जा रही है। अब देखो मौज आगे क्या करती है? मौज ने क्यों मेरे दिमाग़ को फेरा? मैं जानता नहीं। मगर एक बात भली भाँति मेरी समझ में आ गई, वह यह कि जो कुछ मैंने सन्तमत से समझा, मानता हूं कि आम आदमी उसको समझ नहीं सकता फिर भी यदि समझदार वर्ग की बुद्धि में वह बैठ जाय, तो हमारा जो धार्मिक पक्षपात, धार्मिक द्वेष, अथवा हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई आदि में जो पारस्परिक भेद है, वह समाप्त हो सकता है। कबीर साहिब कहते हैं :--

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुद्धि लाइए।
कीजै साहब से हेत, परम पद पाइए।

कबीर जी कहते हैं सतगुरु की हाट पर जाओ। हाट कहते हैं दुकान को बाज़ार को। सतगुरु की दुकान पर क्या सौदा लेना है ? ज्ञान, बुद्धि, समझ, और विवेक। इस समझ और विवेक से तुमको क्या मिलेगा ? सच्चे साहब से प्रेम करने का ढंग। पता चल जाएगा कि सच्चा साहब है क्या। प्रेम का ढंग आ जाने से तुमको धीरे - 2 परम पद मिल जायेगा।

जब तुम किसी दुकान पर सौदा लेते हो, तो तुम्हें उसका मूल्य देना पड़ता है। कोई भी सौदा मुफ्त में नहीं मिलता। सन्तों की दुकान पर जाकर क्या मूल्य देना पड़ता है ? वह मूल्य है सतगुरु की बात को ध्यान से सुनना। जो लोग सत्गुरु के वचन, जो वह सत्संग में कहता है, उनको ध्यानपूर्वक नहीं सुनते, उनको कुछ नहीं मिलता, क्योंकि वह उसका मूल्य नहीं देते। यही बात राधास्वामी मत की वाणी में कही गई है :--

सखी आए सतगुरु आगे,
दरश न पकड़ा वचन न लागे।
कहो इस सत्संग स क्या फल पाया,
वक्त गया और जन्म गंवाया॥

तुम वचन को उस समय पकड़ सकोगे, जब तुम्हारा ध्यान वक्ता की शकल पर होगा। यदि तुम वक्ता की ओर देखोगे ही नहीं, ध्यान दूसरी ओर रखोगे, तो तुम्हें कुछ समझ आ ही नहीं सकती। 'सार वचन' में लिखा है :-

दर्शन करे बचन पुनि सुने।
सुन - 2 कर नित मन म गुने॥

गुन - 2 कढ़ि लेय तिस सारा।
काढ़ि सार, तिस करे अहारा॥

सतगुरु की हाट पर ज्ञान बुद्धि का सौदा करने के बाद मालिक से हेत या प्रेम करने से हो परमपद की प्राप्ति होती है। परमपद वह अवस्था है जहाँ हम बठ कर समस्त दु:खों को, आशाओं को, चिन्ताओं को भूल कर, निज स्वरूप में आप पूर्ण हो कर, सुख शान्ति और आनन्द लेते हैं। गुरु तुम्हें परमपद् के प्राप्त करने का तरीका या भेद बतलाता है रास्ता बतलाता है परन्तु उस रास्ते पर चलना तो तुम्हें स्वयं ही होगा।

मैंने सत्संग का काम आरम्भ क्यों किया? मैं अब भी यह काम क्यों करता चला जा रहा हूं? मैं अपना कर्म भोगता हूं। मैंने इच्छा की थी, वासना की थी कि जो कुछ मैं इस मार्ग पर अनुभव करूंगा सब को बता जाऊंगा। अब अनुभव कर रहा हूं और आपका बता रहा हूं। लगता है यही मेरे जीवन का उद्देश्य है। यही जीवन का लक्ष्य है।

कोई आदमी सहस्‌दल कंवल में अभ्यास करता है, कोई त्रिकुटी में, कोई भँवर गुफ़ा में तो कोई सतलोक में। जो जिस स्थान या श्रेणी पर अभ्यास करता है, वह उस स्थान के पद का मालिक हो जाता है।

मैंने बताया कि सहस्‌दल कंवल या सहस्त्राकार अर्थात् जो हमारा मन अनेक प्रकार के विचार उठाता रहता है, वह भी परमपद नहीं है। त्रिकुटी में त्रिकुटी, बाद में है ध्याता,

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

ध्यान और ध्येय। यह भी परमपद नहीं है। सुन्न और महासुन्न में द्वैत है। अद्वैत मन का है। यह भी परमपद नहीं है। भंवरगुफ़ा में हमारा अपना-२ अकेला आत्मा रहता है। यह बहुत ही ऊंची अवस्था है। मगर यह भी परमपद नहीं है। सहस्त्राकार, ओंकार, ररंकार, सोहंकार और सत्याकार से भी परे परमपद है, जो अकालपुरुष, अनामीपुरुष,परमतत्त्व,सच्चा साहब सब का आधार है। हम या हमारी जो सुरत है, वहां से यहां आई हुई है। जब तक हम सतगुरु से विवेक और ज्ञान प्राप्त करके अपने अन्तर में सहस्त्राकार, ओंकार, ररंकार, सोहंकार और सत्यकार से आगे नहीं जायेंगे, हम परमपद को या सच्चे साहब को प्रेम नहीं कर सकते। इसलिए सन्तों के मार्ग में गुरुनानक जी ने सच्चे साहब को अकालपुरुष कहा है। कबीर जी ने अनामीपुरुष कहा है। राधास्वामी मत में अनाम कहा है। सच्चा ज्ञान गुरु से जब प्राप्त कर लिया, पर यदि ज्ञान प्राप्त करने के बाद उस पर मनन नहीं किया अथवा उस ज्ञान को जीवन में लागू नहीं किया, तो परमपद बहुत ही दूर है। बाहर के गुरु ने तो तुमको सच्चा ज्ञान, सच्ची बुद्धि, सच्चा विवेक देना है। तुम अपनी बुद्धि के अनुसार जो कुछ भी ज्ञान बाहर के गुरु से प्राप्त किया है उसको अपने जीवन में लागू करो। उसको जीवन में असली रूप दो। यदि उसका प्रयोग नहीं करते तो उस ज्ञान का कुछ भी तो लाभ नहीं होगा।

सतगुरु सब कुछ दीन्ह, देत कछु न रहयो।
हम हो अभागिन नारि, सुख तज दुख लहयो॥

सत्गुरु ने तो सब कुछ दे दिया। जीने का रहस्य बताया कि दुनियां में कैसे जीओ, क्या करो और अपने जीवन को कैसे व्यतीत करो। गुरु ने तो कोई भी कमी नहीं रखी देने में। परन्तु अभागे तो हम स्वयं हैं कि बात को सुना परन्तु समझा नहीं, उस पर अमल नहीं किया।

तुम सब भूल गए हो। तुमने गुरु की महिमा को समझा नहीं। तुमने गुरु को काल मत बनाया हुआ है। तुम उस आदमी को सद्गुरु मानते हो, जिसका रूप तुम्हारे अन्दर प्रगट होता है, या जो तुम्हें दर्शन देता है। मैंने तुम्हें कई बार मिसालें दे दे कर यह सिद्ध कर दिया है कि जो रूप तुम्हारे अन्दर में प्रगट होता है वह तुम्हारे अपने ही मन का रूप होता है, गुरु का नहीं, सद्गुरु का नहीं। सद्गुरु का रूप तो है, ज्ञान, सच्ची बुद्धि, सच्चा विवेक। गुरु गोविन्द सिंह जी की वाणी है :-

आत्म ज्ञान गुरु उपदेशे।

समझ जाओ कि गुरु का रूप है ज्ञान, समझ, विवेक।

गुरु ब्रह्मा (शिव संकल्प)

जिस प्रकार आजकल के सत्संगी केवल गुरु की देह के साथ ही चिपटे हुए हैं, केवल देह से ही प्रेम करना चाहते हैं, ऐसे ही मैं भी दाता दयाल की देह से प्रेम किया करता

था। जो कुछ वह कहते थे, उसकी ओर मेरा ध्यान कम जाता था, मेरा तो अन्धा प्रेम था, भावुक प्रेम था जो देह तक ही सीमित था। सभी अज्ञानी जीवों के प्रेम की आरम्भ में ऐसी ही दशा होती है। छोटा बच्चा मां को अगाध प्रेम करता है, उसमें यह शक्ति या ज्ञान नहीं होता कि मां जो कहे उसकी समझ में आए। परन्तु बच्चा ज्यों - 2 बड़ा होता जाता है मां को बात उसकी समझ में आने लगती है। कबीर साहब कहते हैं कि सद्गुरु के पास से ज्ञान और बुद्धि प्राप्त होती है। मैं अज्ञानी था, ज्ञान प्राप्त नहीं होता था। दाता दयाल जी से मैं बहुत प्यार करता था। वह मुझे ज्ञान देने के लिए कहा करते थे :--

कहना सुनना सब है निष्फल,
मान बात एक मेरी।
एक बात जो मेरी माने,
सौ - सौ सुनूंगा तेरी ।।
कोटि ग्रन्थ पढ़कर क्या पाया,
गुरुगम ज्ञान न सूझा।
एक सैन से अनुभव जागे,
गुरुमत जिसने बूझा ।।
नहिं वह कर्म धर्म जप तप है।
नहिं वह आंख का ज्ञाना।
नहिं वह संयम नियम है प्यारे,
नहिं वेदान्त का ध्याना ।।
वाद विवाद है दन्त कहानी,
बात का बने बतंगड़ा।

शब्द जाल में जो कोई जकड़ा'
बुद्धि टांग का लंगड़ा ।
कान इधर ला, कह दूँ तुझसे,
कर गुरु का सत्संगा ।
राधास्वामी की कृपा से,
मन नहीं उपजेगी शंका ।।

दाता ने गुरयायी का काम मुझे इसलिए सौंपा कि मैं सत्संगियों को सत्संग देने के द्वारा स्वयं सत्संग के सार को समझूं, जो उस समय मेरी समझ में नहीं आता था। सत्संग कराते - 2 तथा आपकी बातों से कि मैं आपके अन्दर प्रगट होता हूं, जबकि मैं वास्तव में होता नहीं, बात मेरी समझ में आ गई। रहस्य खुल गया कि दुनिया क्या है ? दुनिया काल और माया का खेल है, हमारे अन्तर में जो भी खेल होते रहते हैं, वे भी सब काल और माया का खेल है। अब मैं ऐसा सत्संग कराता हूं कि वास्तव में जो जीव सचमुच सच्चे साहब से हेत करना चाहते हैं उनको सच्चा विवेक दे जाऊं और असली रहस्य बता जाऊं। सतगुरु जो होता है वह निज स्वार्थ के लिए काम नहीं करता। सत्संग कराने का काम जो मेरे दाता ने सौंपा, वह मेरे ही उत्थान के लिए, मेरे ही कल्याण के लिए सौंपा। मैं तो मालिक से मिलने आया था। मुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया, समझ आ गई, मालिक का पता चल गया कि वह कहां रहता है और वह क्या है ? मुझे निज घर का पता चल गया। यह पता चल गया कि लोगों को डूबने से बचाने वाला रोगियों के असाध रोगों को दूर करने वाला कौन होता है ? वह होती है मनुष्य की अपनी

ही आत्मा, अपना ही मन। जिस प्रकार जिसका विश्वास होता है, जिसकी आस होती है, उसी के अनुसार ही उसका जीवन बनता है। मीरा बाई की बात तो आपने सुनी ही होगी। मीरा को अपने गिरधर गोपाल में अगाध विश्वास था। उसके देवर ने उसे मारने के लिए विष का प्याला भेजा और कहलवा भेजा कि वह अमृत का प्याला था। और गिरधर गोपाल का प्रसाद था। मीरा ने उसे गिरधर गोपाल का प्रसाद समझ कर पी लिया और वह विष सचमुच अमृत बन गया।

गृहस्थी लोग यदि हमेशा आशावादी रहें कि मालिक जो करता है अच्छा ही करता है। जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ और जो कुछ होगा अच्छा ही होगा, तो इस विश्वास के आधार पर दुःख भी सुख प्रतीत होने लगता है। इस विश्वास के कारण जो कुछ भी तुम्हारे लिए होगा उसमें तुम्हें सुख ही मिलेगा।

जिस व्यक्ति ने सतपुरुष को जान लिया है, उसका नाम सतगुरु है। उसकी संगत से, उसकी सेवा से तुमको सत्-पुरुष की प्राप्ति अवश्य होगी। सच्ची समझ और सच्चे ज्ञान का प्राप्त करना ही सतपद में जाना है। बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं, मोक्ष नहीं। मोक्ष किसे कहते हैं? हमारा मन जब किसी ख्याल में फंस जाता है, उलझ जाता है, तो वह बन्धन कहलाता है, उस ख्याल से मुक्त हो जाने को मुक्ति या मोक्ष कहते हैं। गृहस्थी लोगों को अनेक प्रकार के बन्धन होते हैं। उन बन्धनों से निकलना आसान काम नहीं

होता। सद्गुरु ही हमको सच्चा ज्ञान तथा विवेक दे कर इन बन्धनों से मुक्त कर सकता है। स्वामी जी कहते हैं :--

बंधे तुम गाढ़े बन्धन आन ।।

पहला बन्धन पड़ा देह का, दूसरे त्रिया जान।
तीसर बन्धन पुत्र विचारो, चौथा नाती मान ।।
नाती के भी नाती होवे, फिर कहो कौन ठिकान।
धन सम्पत्ति और हाट हवेली, यह बन्धन करूं क्या बखान ।।
चौलड़, पचलड़, सतलड़ रसरी, बाँध लिया बहु विधि तान।
कैसे छूटन होय तुम्हारा, गहरे खूंटे गढ़े निदान ।।
मरे बिना तुम छूटन नाहीं, जोते जी तुम सुनो न कान।
जगत लाज और कुल मर्यादा, यह बन्धन सब ऊपर ठान ।।
लोक पुरानी कभी न छोड़ो, जो छोड़ो तो जग की हान।
क्या - 2 कहूं विपति मैं तुम्हरी, भटको जोनी भूत मसान ।।
तुम तो जगत सत्य कर पकड़ा, क्यों कर पाओ नाम निशान।
बेड़ी तौक हथकड़ी बांधे, काल कोठरी कष्ट समान ।।
काल दुष्ट तुम बहु विधि बांधा, तुम खुश हो कर रहो गलतान।
ऐसे मूरख सुख दुख जाना, क्या कहूं अजब सुजान ।।
शर्म करो कुछ लज्जा ठानो, नहिं जमपुर का भोगो डान।
राधास्वामी शरण गहो अब, जो कुछ पाओ उनसे दान ।।

चार प्रकार के ज्ञान हैं। एक ज्ञान ब्रह्म है। तुमने

ब्रह्मा की तरह बच्चे पैदा करने हैं। मैं चाहता हूं कि तुम अच्छी सन्तान पैदा करो और उनका गुरु विष्णु की भांति पोषण करो और गुरु महेश्वरा की भाँति दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से अलग रहना सीखो, गुरु पारब्रह्म की भांति अपने असली घर, शब्द और प्रकाश में चले जाओ। गुरु की महिमा अपरम्पार है। तुम गुरु की कृपा से परमपद को इसी ही जन्म में पा सकते हो।

फ़कीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट सुतैहरी रोड, होशियारपुर को दिया धन आयकर अधिनियम की धारा80-जी के अन्तर्गत,आयकर आयुक्त के पत्र नं. ***JUDL TRUST 13999 dt. 31-12-91***, साल ***30-4-9194*** तक आयकर से मुक्त है।

सत्संग

परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज

सिकन्राबाद (आन्ध्र प्रदेश) A.O.C. गेट Be Man Temple, दुपहर 6-2-92

जिनको चाह राम की साधो,
राम उन्हें मिल जाते हैं।
रामदास के पास राम हैं,
और नहीं कोई पाते हैं॥
वाद विवाद में राम नहीं है,
राम न पूछा पेखी में।
राम दास ने राम को पाया,
सहज ही देखा देखी में॥
राम नहीं तीरथ में रहते,
राम बरत के साथ नहीं।
राम दास के हाथ राम हैं,
औरों के वह हाथ नहीं॥
बून्द में सिन्धु सिंधु में बूंदें,
बुन्द सिन्धु दोऊ एक हुए।
बून्द सिन्धु का झगड़ा मन में,

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

उनके लिए अनेक हुए ॥
राधास्वामी सतगुरु आए भेद दिया पूरा पूरा।
जो कोई भेदभाव को मेटे सतगुरु का सेवक सूरा ॥

राधास्वामी---

मेरी आत्मा के स्वरूप सद्गुरु रूप, प्यारे सत्संगी भाईयो और बहनों !

मौज के आधीन इधर आना हो गया। आपने जो मुझसे यहां पर सत्संग देने के लिए आग्रह किया, उसे मैं टाल नहीं सका। एक बार मेरे आने की सूचना हज़ूर आनन्दराव जी महाराज को नहीं मिली और मैं आ गया। आनन्दराव जी महाराज दाता दयाल जी महाराज की आरती कर रहे थे। उन्हें मेरे पीछे खड़े होने का पता नहीं चला। आरती के बाद जब उन्होंने मुझे देखा, तो चौंक गए और तुरन्त मेरे से बग़लगीर होकर कहने लगे, "महाराज! पहली बार मेरे से ग़लती हो गयी, भविष्य में फिर ऐसी ग़लती नहीं होगी।" उनके अन्दर मेरे लिए कितना प्रेम भरा हुआ था। चोला छोड़ने के एक साल पहले जब वह हनमकुण्डा में आए मेरे साथ बहुत प्रेम से बात की। कहने लगे "मेरो सब ग़लतफहमियां दूर हो गईं।" जब वह मेरे सत्संग में बैठते थे, तो आँसू बहाने लगते थे। मैं पहले भी यहां पर कई बार आया। यहां पर आना मुझे अच्छा लगता है। यह दाता दयाल जी महाराज का स्थान है और वह एक सच्चे सन्त थे। इस समय जो दाता दयाल जी महाराज का छोटा सा शब्द पढ़ा गया, उसमें

राधास्वामी मत का सार छुपा हुआ है। परमदयाल जी महाराज ने मुझ से कहा था, "मानव तुम्हें यह बात प्रमाणित करनी है कि स्नातन धर्म और सन्तमत एक है। परमदयाल जी महाराज ने मुझे यह भी बताया "जब मैं पहली बार दातादयाल जी महाराज के पास गया, तो उन्होंने मुझे 'सार वचन किताब पढ़ने को दी। मैं सार वचन पढ़कर रोने लगा। उसमें लिखा हुआ था कि पाराशर नहीं पहुंचे। वेदशास्त्र कुछ नहीं हैं। अब बताओ कौन ब्राह्मण ऐसी बातें सुन सकता है?" मैंने उन्हें कहा, "मैं ब्राह्मण सुन सकता हूं।" मैंने महाराज जी को बताया कि यह शास्त्र जो हैं, यह तो एक ही परमतत्व पर अलग - २ ही बंटा हैं। लेकिन इनके जो संचालक थे, उन्होंने अनुभव के आधार पर परमतत्त्व की व्याख्या की। जैसे न्याय दर्शन के संचालक गौतम ऋषि थे। वह न्याय के द्वारा चिंतन करते-करते मालिक के पास पहुंच गए। सांख्यदर्शन के संचालक कपिल थे, जिन्होंने सांख्य के द्वारा मालिक का दर्शन किया। इस सांख्य को सन्तमत भी मानता है। योग साधना के द्वारा पतंजली ने वही अन्तिम अवस्था बताई, जिसे असम्प्रज्ञान समाधि कहा जाता है। जिसे स्वामी जी महाराज ने 'कुछ नहीं,' 'कुछ नहीं' कहा। इन शास्त्रों के जो रचियता थे, उन्होंने तो अनुभव किया, लेकिन चेलों ने अनुभव तो किया नहीं और आपस में लड़ने लगे। स्वामी जी महाराज ने ठीक ही कहा है :---

खट शास्त्र बुद्धि चलाया।
अन्ध मिल धूल उड़ाया।

गुरुओं ने तो अनुभव के आधार पर कहा, मगर

शिष्यों ने अपनी - २ बुद्धि चला दी और आपस में ही एक दूसरे को गलत बताने लगे। परमदयाल जी महाराज कहने लगे, "शर्मा तू तो कमाल की बात बता रहा है।" आनन्दराव जी महाराज मेरा हाथ पकड़ कर बैठते थे, कुछ बात थी न। जैसे परमदयाल जी महाराज के साथ नन्दू भाई जी महाराज रहते थे, वैसे ही आनन्दराव जी महाराज मेरे साथ रहते ने।

सतपुरुष अपने अनुभवों को बांटने के लिए आता है। वह अपने यह अनुभव अपने डेरे के लिए नहीं, अपने नाम के लिए नहीं, अपने लिए नहीं बांटता, बल्कि वह तो गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए ऐसा करता है। परमदयाल जी महाराज 18 साल तक लगाता मुझे तैयार करते रहे। अन्तिम बार जब वह अमेरिका में मेरे पास आये तो मेरे कमरे में आकर कहने लगे, "शर्मा! मैं तेरे पास आया हूं, मुझे किसी के यहां सत्संग देने की ज़रूरत नहीं है। क्या तेरे पास मेरे लिए दो टुकड़े नहीं हैं। तू मुझे जगह 2 ले जाता है। जब मैं उनको किसी के यहां सत्संग देने के लिए ले जा रहा था। मैं गाड़ी चला रहा था। कहने लगे :---

कितनी दूर तेरी काशी ओ पंडिता।

अब भी मैं जब कभी उस जगह से गुज़रता हूं, तो मेरी आँखों में आंसू आ जाते हैं। परमदयाल जी महाराज ने रात में परसराम जो को कहा, "परसराम! मैं आई. सी. शर्मा के नाम वसियत करके आया हूं। इसमें बड़ा भारी राज़ है। मैं चोला छोड़ने से पहले इसे अपने जैसा बनाकर जाऊंगा।"

दूसरे दिन डा. परसराम जी ने यह बात माता जी को बताई। माता जी ने महाराज जी से कहा, "महाराज जी ! क्या आपने डा. परसराम जी से कहा था कि मैं चोला छोड़ने से पहले इसे अपना जैसा बनाकर जाऊंगा। कहने लगे, "हाँ ! कहा था।" माता जी ने कहा, "महाराज जी ! आप जैसा बनने के लिए इनको कम से कम 20 साल तो अगेंगे ही।" महाराज जी ने कहा, "तू बड़ी चालाक है। मैं इतने साल इस चोले में थोड़े ही समय रहूंगा।" मैंने परमदयाल जी महाराज को कहा, "महाराज जी ! आप मेरे नाम वसियत करके आए हैं कि मेरी जगह आई. सी. शर्मा जी काम करेगा। मैं तो आपका काम कर ही रहा हूं। आपके तो बहुत पुराने पुराने शिष्य होंगे। आप किसी और का नाम वसियत्त में लिख दें, ताकि किसी को दुख न हो क्योंकि मैंने आज तक जान बूझ कर किसी के मन को नहीं दुखाया।" कहने लगे, "नहीं ! यह काम तुम्हें ही करना होगा।" इसके बाद उन्होंने एक वाक्य कहा "जो कुछ मुझे प्राप्त होना था, वह हो गया।"

अगले वर्ष महाराज जी अमेरिका फिर आए। पिट्स्वर्ग हस्पताल में आपरेशन से पहले कहने लगे, "शर्मा ! मेरा आखरी सत्संग रिकार्ड करो।" मैंने टेपरिकार्ड चला दिया। कहने लगे शर्मा ! इस समय जो तुम्हारी हालत है वह बहुत अच्छी है, लेकिन इसके आगे और हालत है। अभी तो तुम सबके अन्दर मालिक को देखते हो। तुम्हारे अन्दर तू है मैं नहीं है। लेकिन इस समय जो हालत मेरी है :--

माला फेरूं न हर भजूं मुख से कहूं न राम।
मेरा राम मुझको भजे तब पाऊं विश्राम।।

यह हालत तेरी जब आयेगी, जब तू सत्संगियों की सेवा का महान कार्य करेगा अर्थात् अपने अनुभवों को सत्संगियों में बांटेगा।" इसलिए मैंने यह काम किया। आज का शब्द दातादयाल जी महाराज का शब्द है :---

जिनको चाह राम की साधो राम उन्हें मिल जाते हैं।
रामदास के पास राम हैं और नहीं कोई पाते हैं।।

सन्तमत पराभक्ति मार्ग है एवं पराप्रेम मार्ग है। राम की चाह का मतलब अपने परमइष्ट सर्वाधार उस मालिके कुल की तलाश में अपने आपको खो देना है, जो हमारा आदि भी है और अन्त भी है। जीव इस जगत् में यह अनुभव करने के लिए आता है कि उसका मालिक स्थूल और सूक्ष्म रूप में कैसे छुपा हुआ है। एक जगह पर दातादयाल जी ने कहा है :---

अदम से जान बेहस्ती तलाशे यार में आये।
हवाये गुल मैं हम इस वादिये पुरख़ार में आये।।

हमारी सुरत जो मालिक का वास्तविक अंश है, इस भौतिक जगत् में अपने प्रीतम की तलाश में आयी। वह अपनी आदि अवस्था में फूल की ख़ुशबू की भांति हल्की और पाक़ थी, किन्तु अपने प्रीतम की तलाश में वह काँटे की इस घाटी में जानबूझ कर दुःखों का अनुभव करने आयी। खेद की बात यह है कि साधारण व्यक्ति अपने इस मक़सद

को भूल जाता है और अपने व्यवहार में दूसरों को मालिक का स्वरूप न समझकर उसे अपना शत्रु मानने लगता है। सद्गुरु हरएक सत्संगी में छुपी हुई राम की चाह को जाग्रत कर देता है।

राम की यह चाह वास्तव में हर जीव के अन्दर, उसे प्रेम के मार्ग पर चलाने के लिए निरन्तर प्रेरित कर रही है। यदि हम अपने सांस की ओर ध्यान दें, तो हमें अनुभव होगा कि हर सांस सोहम - २ कह रहा है। हमारी त्रिकुटी के अन्दर 'ॐ' का शब्द गूंज रहा है। जब यह चाह जाग्रत हो जाती है तो जीव हर क्षण में अपने आपको मालिक के समर्पित कर देता है। उसका हरएक कर्म राधास्वामी के लिए होता है। वह खाता भी राधास्वामी के लिए है और पीता भी राधास्वामी के लिए है। ऐसी अवस्था वाले व्यक्ति को ही रामदास कहा जाता है।

दातादयाल जी के अनुसार केवल राम का प्रेमी ही हर जगह उसका अनुभव करता है। वाद विवाद या तर्क करने वाला व्यक्ति मालिक को नहीं मिल सकता। जो अपने आपको पूरी तरह से ईश्वर के प्रेम में समर्पित कर देता है, उसी को हो साक्षात्कार होता है। अन्त में दातादयाल जी महाराज ने कहा है कि राधास्वामी के रूप में अवतार लेकर सद्गुरु ने यह उद्घोष किया है कि सद्गुरु का सच्चा मतलाशी वह है,जो हर प्रकार के भेदभाव समाप्त कर देता है। मैं सभी सत्संगियों से यह आशा रखता हूं कि वे सभी एक ही सद्गुरु को हर व्यक्ति के अन्दर हाज़िर नाज़िर समझकर उस व्यापक प्रेम का अनुभव करें, जो हर

प्रकार के भेद को समाप्त कर देता है।

मैंने इसी दृष्टि से यह छोटा सा सत्संग दिया है। मुझे खेद से कहना पड़ता है कि लोग दातादयाल जी महाराज और परमदयाल जी महाराज में भेद-भाव उत्पन्न कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति दाता दयाल जी महाराज के मिशन को हानि पहुंचा रहे हैं। दातादयाल जी ने सैंकड़ों शब्दों में उद्घोष किया है कि पंडित फ़कीरचन्द जी महाराज सद्गुरुवक्त और सच्चे फ़कीर हैं। किसी भी सद्गुरु ने अपने शिष्य को इतना ऊंचा नहीं उठाया, जितना दातादयाल जी ने अपने शब्दों में फ़कीरचन्द जी महाराज को दर्जा दिया है। फ़कीर के लक्षण नामक शब्द में दाता दयाल जी महाराज फरमाते हैं :--

तू फ़कीर है मेरे प्यारे सुन फ़कीर की बानी।
साधु कहे फ़कीर को भाई साधु जग सुखदानी।

परमदयाल जी महाराज के फ़कीरतत्त्व की व्याख्या करते हुए इसी शब्द में दातादयाल जी महाराज ने कहा है :--

न मैं राम कृष्ण का सेवक ईश ब्रह्म नहीं जानुं।
मैं तो नाम फ़कीर दिवाना सबसे बढ़कर मानूं।
जो फ़कीर मोहे दर्शन देवे अपना भाग्य नराहूं।
अपने तन के चाम की जूत्ती पग फ़कीर पहराऊं॥

केवल इतना ही नहीं, बल्कि दातादयाल जी महाराज इतने तक कहते हैं :--

यह बोले मैं कैद न छोडूं,
कितना करो उपाओ ॥
मैं फ़कीर हूं देह बन्ध में,
जीवों के हित आया।
सात हज़ार छोड़ दे कैदी,
उपजी मन में दाया ॥
बादशाह ने सब को छोड़ा,
तब वह बाहर आए।
आप छूटे औरन को छुड़ाया,
दया का साज सजाए ॥
यह इतिहासिक कथा पुरानी,
चरित पुनीत सुहावन।
मन रंजन मन चेत बढ़ावन,
मन भावन मन पावन ॥
देह के बंध फ़कीर जो आवे,
बंध निरबंधन सोई।
बंधकर बन्धुवे जीव छुड़ावे,
समझे यह गति कोई ॥
तू तो आया नर देही में,
धर फ़कीर का ऐसा।
दु:खी जीव को अंग लगाकर,
लेजा गुरु के देसा ॥
तीन ताप से जीव दु:खी हैं,
निबल अबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई,
नामदान दे दानी ॥
नाम फ़कीरधरा जब तूने,

यह बोले मैं कैद न छोड़ूं,
कितना करो उपाओ ।।
मैं फ़कीर हूं देह बन्ध में,
जीवों के हित आया ।
सात हज़ार छोड़ दे कैदी,
उपजी मन में दाया ।।
बादशाह ने सब को छोड़ा,
तब वह बाहर आए ।
आप छूटे औरन को छुड़ाया,
दया का साज सजाए ।।
यह इतिहासिक कथा पुरानी,
चरित पुनीत सुहावन ।
मन रंजन मन चेत बढ़ावन,
मन भावन मन पावन ।।
देह के बंध फ़कीर जो आवे,
बंध निरबंधन सोई ।
बंधकर बन्धुवे जीव छुड़ावे,
समझे यह गति कोई ।।
तू तो आया नर देही में,
धर फ़कीर का ऐसा ।
दुःखी जीव को अंग लगाकर,
लेजा गुरु के देसा ।।
तीन ताप से जीव दुःखी हैं,
निबल अबल अज्ञानी ।
तेरा काम दया का भाई,
नामदान दे दानी ।।
नाम फ़कीरधरा जब तूने,

काम फ़कीर का कर ले।
गुरु की दया साथ ले अपने,
भक्ति की झोली भरले।
तू इशक से अब के आया,
सत संगत के कारण।
ले प्रसाद यह सत संगत का,
होजा भव निधि तारन ।।

राधास्वामी दया के सागर,
होंगे तेरे सहाई ।
फूक में उतरे सांच फ़कीरा,
सब की करे भलाई ।।

इस शब्द से यह स्पष्ट हो जाता है कि दाता दयाल जी महाराज ने फ़कीरचन्द जी महाराज को जगत् कल्याण की दृष्टि से परमदयाल कहा है।

अनेक शब्दों में उन्होंने फ़कीर की प्रशंसा की है और कहा है :--

'फ़कीरा मैं तेरे दर्शन का प्यासा।'
'है फकीर का नाम प्यारा, मैं फकीर का दासा।
तन मन धन फकीर पर वारूं, बसूं सुसंग सुबासा ।।
कठिन नाम है कठिन काम है, कठिन फकीर कमाई।
जग के भवदुख नासें पल में, जब फकीर जग आई, ।।
जो फकीर मोहिं दर्शन देवे, अपना भाग्य सराहूं।
अपने तन के चाम की जूती, पग फकीर पहनाऊं ।।
मैं नहिं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रह्म नहिं जानूं।
मैं फकीर का नाम दिवाना, सबसे बढ़कर मानूं ।।

जो फकीर का दर्शन पाऊं, चरन सरोज पखारूं।
आप तरूं फकीर शरनाई, औरों को संग तारूं॥

दातादयाल जी ने चोला छोड़ने से पहले जो अन्तिम शब्द लिखा है उसको यहां पर प्रस्तुत करना भूले भटके लोगों की आंखें खोलने के लिए नितान्त आवश्यक है :---

कौन है शादां यहां शादाँ फ़कत ज़ाने फ़कीर
खुश नहीं हरगिज़ तवंगर मालो ज़र वाले अमीर
तर्क दुनिया तर्क उक़बा तर्क मौला कर दिया
तर्क का भी तर्क है इस तर्क से दिल भर गया।
चश्मेवाहदत भी मिली वाहदत का मंज़र देखकर
कर रहा है रात दिन दुनिया की मंज़िल का सफ़र
क्या है दुनिया ख़्वाब है और ख़्वाबबी ज़ाते फ़कीर
दामेहर सो मालोज़र में वो नहीं हरगिज़ असीर
ख़ाक में दुनियां मिली और ख़ाक ही है वो मदाम
वो खुशी खे सादमां रहउा है हरदम सुबोशाम
आबदो माबूदियत माबूद से आज़ाद है
खुश मुजस्सिम खुश है दिलका एह कावोशाद है
जिसको देखा इस तरह समझो वही सच्चा फ़कीर
दस्ते गीरे दो जहाँ और दो जहाँ का है वो पीर
आया जो कुछ भी समछ में तेरे लिए लिख दिया
तूने फैलाया था दामन आज उसको भर दिया
ज़ात में अपनी हुआ गुरु तुम भी गुरु होना कभी
मंज़िले मक़सूद पर पहुंचोगे सुनलो यह अभी
इसलिए सबसे ज्यादा मुझको तुम पर नाज़ है
नाम रौशन तू करेग़ा ये दिली आवाज़ है।

मैंने यह सब कुछ इसलिए कहा है कि सद्गुरु वक्त को परम्परा स्वामी जी महाराज से चलकर परम दयाल जी महाराज तक सीधी चली आयी है और आगे चल रही है। गुरु और आचार्य अनेक हो सकते हैं, किन्तु सद्गुरु वक्त एक होता है और वह सद्गुरु वक्त प्रेममय ईर्ष्या से रहित और सभी को परमतत्व का अंश और अपना अंश स्वीकार करके चलता है। इन शब्दों के साथ मैं इस सत्संग को समाप्त करता हूं। सबको राधास्वामी।

मासिक सन्देश

सत्संग परमसन्त सद्गुरु
हजूर मानव दयाल
डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,
परमप्रिय सत्संगियो :
राधास्वामी, परमदयाल जी सहाई।

मई महीने की 31 तारीख को साप्ताहिक सत्संग में सत्संगियों की संख्या अधिक इसलिए थी, क्योंकि मैं पूरे एक महीने दौरे पर था। दैनिक सत्संग भी लगातार जून के दौरान प्रभावशाली रहे। मेरा अधिक समय लिखने पढ़ने में व्यतीत हुआ। परमदयाल जी महाराज की संक्षिप्त जीवनी तैयार हो रही है, क्योंकि इसकी बहुत ही मांग है। इसी प्रकार भागवद्गीता का अंग्रेज़ी कविता में भगवद्गीता का सन्तमत की दृष्टि से प्रकाशित होने के लिए तैयार हो चुका है। यह पुस्तक अंग्रेज़ी भाषा पढ़ने वालों के लिए और विशेष कर पश्चिम के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगी। इसी प्रकार, "सिद्ध सतपुरुष फ़कीर बाबा चमत्कारों से

परे" हिन्दी की पुस्तक का अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद मुकम्मल हो चुका है। आचार्य श्री छविनाथ ओझा ने इस अनुवाद को किया है और उसमें उन्होंने काफी समय लगाया है। इसी प्रकार बहुत से लोगों के बार - 2 कहने पर परमदयाल जी की पुस्तक 'सत्सनातन धर्म' का सन्शोधन करके, उसे जालन्धर में मुद्रित कराया जा रहा है। यह पुस्तक कुछ दिनों में छपकर तैयार हो जायेगी। इस पुस्तक का मूल्य केवल 20 रुपए होगा और डाक का खर्चा अलग होगा। मेरी तो यह इच्छा थी कि यह पुस्तक हरएक जिज्ञासु को नि:शुल्क उपलब्ध होनी चाहिए। फिर भी 20 रुपए, वास्तव में, पुस्तक की लागत से बहुत कम हैं, क्योंकि इसके छपवाने में एक श्रद्धालु सत्संगी श्री विश्वामित्र मराज ने कुछ आर्थिक अनुदान दिया है। भविष्य में कुछ पुस्तकें किश्तों में मानवमन्दिर पत्रिका में भी छपवाई जायेंगी। सत् सनातन धर्म पुस्तक की विश्वभर में मांग है, क्योंकि परमदयाल जी महाराज ने 1968 में उज्जैन में कुम्भ के अवसर पर जो सत्संग दिए थे, उन्हीं के संकलन को उन्होंने स्वयं पुस्तक के रूप में छपवा दिया। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि सत् सनातन धर्म और राधास्वामी मत एक है। जो लोग अपने आपको राधास्वामी कहते हैं और सनातन धर्म की सच्चाई को नहीं जानते। वह राधास्वामी मत को कालमत बना रहे हैं।

मानवता मंदिर में सच्चे राधास्वामी मत की शिक्षा दी जाती है और अनुभव के आधार पर सत्संग दिए जाते हैं। स्वामी जी महाराज ने स्वयं कहा है :---

सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा।
तू तो पड़ा भरम के कूपा।।

इसमें कोई शक नहीं कि स्वामी शिवदयाल जी महाराज परमतत्वाधार दयाल पुरुष के अवतार थे और उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर ही उस राधास्वामी योग एवं सुरत-शब्द योग का उच्चतम अनुभव करके, हरएक व्यक्ति के लिए राधास्वामी अवस्था एवं निजधाम, प्राप्त करने के लिए सहजमार्ग बता दिया। उन्होंने स्वयं राधास्वामी शब्द की व्याख्या की है जिसमें उन्होंने बताया है कि हर मनुष्य के अन्दर राधा रूपी सुरत और स्वामी रूपी शब्द मौजूद हैं। सुरत शब्द योग के द्वारा सद्गुरु के मार्ग-दर्शन में, हर एक व्यक्ति उच्चतम राधास्वामी अनुभव को प्राप्त कर सकता है। इस लिए उन्होंने ऊपर दिए गए पद्य में यह बताया है कि सुरत और शब्द दोनों एक ही अनुभव के पहलू हैं, उनको अलग समझना एक भारी भूल है। जून के महीने के साप्ताहिक सत्संगों में मैंने इसी भेद को सरल भाषा में प्रस्तुत किया। यही कारण है कि इन सत्संगों में अधिक लोग रूचि ले रहे हैं और उनकी संख्या अधिक से अधिक हो रही है।

परमदयाल जी महाराज कहा करते थे "कि ज्यादातर सत्संगी केवल दुनियावी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही आते हैं और जिस उत्तम शिक्षा को मैं देना चाहता हूं, उसका कोई ग्राहक नहीं है।" इसलिए वह नामदान नहीं देते थे। बात असल में ये है कि राधास्वामी मत में जो मालिक का उच्चतम नाम सुमिरन के लिए दिया जाता है। वह पूर्ण

है, मुकम्मल है और उसमें कोई कमी नहीं है। जिस परम-तत्वाधार से सत्संगी के मन में मिलने की तड़प होती है, वह मालिक सभी रंग रूपों से परे, नाम और अनामी से भी परे ज़ातेपाक शुद्धतत्व है, जिसे स्वामी जी ने अपने शब्दों में "कुछ नहीं" कहा है। जब तक सत्संगी "कुछ नहीं" हालत में नहीं पहुंचता, जब तक उसे बेख़्वाहिशी को ख़्वाहिश नहीं हो जाती, तब तक उसे राधास्वामी हालत का अनुभव नहीं हो सकता। सतगुरु सत्संग में अपने सत्संग की धारा से धीरे - 2 सत्संगी को उसी शुद्ध आशा, तृष्णा रहित अवस्था में पहुंचा देता है। यदि सत्संग देने वाले व्यक्ति को स्वयं उसका अनुभव नहीं होगा, यदि वह स्वयं आशा, तृष्णा रहित नहीं होगा, तो वह खुद भी डूबेगा और सत्संगियों को भी डुबो देगा।

जून के महीने का मासिक सत्संग 21 तारीख को हुआ और हमेशा की भाँति सैंकड़ों सत्संगी दूर - 2 से शनिवार 20 जून को सायंकाल तक पहुंच गए। इसलिए शनिवार के रात्रि के सत्संग में न ही केवल बहुत अधिक संख्या ही थी, बल्कि सभी सत्संगियो ने सत्संग इतने गहरे ध्यान से सुना कि कई लोगों की समाधि लग गई और सत्संग के अन्त में उन्होंने ऐसा महसूस लिया, मानो कि वे आनन्द के अथाह सागर से डुबकी लगाकर आए हैं। हर मासिक सत्संग से पूर्व हर महीने रात्रि का सत्संग हुआ करता है। उस समय तक बाहर से आने वाले सत्संगी बहुत बड़ी संख्या में मानवता मन्दिर में पहुंच जाते हैं। इन पहुंचने वालों में से विशेषकर बटाला के सत्संगियों, अभोर के सत्संगियों और लालरु के सत्संगियों, दुराहा और लुधियाना के सत्संगियों

के नाम उल्लेखनीय हैं। मैं उनकी सराहना किसी अपनी स्वार्थपूर्ण एषणां के लिए नहीं कर रहा, बल्कि इसलिए कर रहा हूं कि रात्रि के सत्संग के दौरान में यह बहुत प्रसन्न मुद्रा में और मस्ती में दिखाई देते हैं। उनकी यह मस्ती और श्रद्धा दूसरे सत्संगियों पर भी प्रभाव डालती है। दुलहर के श्री भगतराम और लुधियाना के श्री मुकुन्दसिंह इस दृष्टि से बहुत ही अधिक प्रभावित होते हैं। दूसरे दिन मासिक सत्संग बड़े सत्संग हाल में हुआ और सत्संग आरम्भ होने से पहले न ही केवल सत्संग भवन में, बल्कि उससे बाहर भी लोग सत्संग के लिए बैठे थे।

मासिक सत्संग मानो सारे महीने के दैनिक और साप्ताहिक सत्संगों का केवल सारांश ही नहीं होता, बल्कि वह एक ऐसा निराला सहज भक्ति भाव के वातावरण को उत्पन्न करने वाला होता है, जिसमें सभी लोगों को लाभ होता है। मेरे लिए भी मासिक सत्संग एक विशेष महत्त्व रखता है। इस सत्संग पर पहले स्वामी जी महाराज का, उस महीने से सम्बन्धित शब्द पढ़ा जाता है, जिसमें मासिक सत्संग हो रहा होता है। स्वामी जी महाराज ने हर महीने के वातावरण को एक पैनी दृष्टि से देखा है और उस वातावरण से जीव को कौन सी प्रेरणा लेकर सुरत शब्द योग का अभ्यास करना चाहिए, ऐसी युक्ति बताई है। मिसाल के तौर पर ज्येष्ठ का महीना बहुत गर्म होता है। स्वामी जी महाराज ने इस गर्मी को जीव के अन्दर उस 'तपनकरारी' की उपमा दी है, जो उसे संसार के दुःखों से मुक्त होने और सद्गुरु से अगाध प्रेम करने की प्रेरणा देती है मेरा सत्संग हर बार नया होता है, हालांकि स्वामी जी का शब्द पुराना

होता है। स्वामी जी का शब्द या उनकी कविता आम कविता नहीं होती, बल्कि वह ऐसे सत्य का विवेचन करती है, जो वेद मन्त्रों उपनिषदों और भगवद्गीता के श्लोकों की भांति हर बार पढ़ने पर नई प्रेरणा देते हैं। सद्गुरुओं और सत्पुरुषों के वचन इसलिए अटल कहे जाते हैं, कि उनमें जो सच्चाई होती है, वह ज़माने के परिवर्तनों के बावजूद भी शाश्वत रहती है। ऐसी वाणी और ऐसी अगम की धारा को आप्तवचन कहा जाता है।

यही कारण है कि सत्पुरुषों की वाणी को आम आदमी नहीं समझ सकता। उसको समझाने के लिए और उसमें निहित सत्य को जीवन पर लागू करने के लिए एक सत्पुरुष की आवश्यकता रहती है। इसलिए राधास्वामी मत में सद्गुरु सत्संग और सत्नाम की त्रिवेणी में सद्गुरु को पहला सोपान माना गया है। जब कबीर साहिब यह कहते हैं कि सद्गुरु की हाट से ज्ञान बुद्धि लानी चाहिए, उनका मतलब यह नहीं होता कि वह बुद्धि सत्संगी की अपनी बुद्धि होती है। वास्तव में, इसका अर्थ यह है कि सद्गुरु की टिकी हुई बुद्धि अर्थात् स्थित प्रज्ञा होती है, जो जीव को उभार देती है। इस भेद को स्पष्ट करते हुए कबीर साहिब ने कहा है :--

"उतते सद्गुरु आइया, जाकी बुद्धि मति धीर
भवसागर के जीव को खेह लगावे तीर"

इसी टिकी हुई बुद्धि को सनातन धर्म में प्रज्ञा पुराणी कहा गया है। लोग पुराणों को कहानियाँ समझते हैं, किन्तु वास्तव में, पुराणों में पराभक्ति और

पराप्रेम का मार्ग बताया गया है। पुराणों में भी वही ज्ञान है, जो सन्तों ने अपनी वाणी में बताया है। गरुड़ पुराण में केवल गुरु की महिमा बतायी गयी है। श्रीमद्भागवत पुराण परमतत्वाधार, मालिकेकुल की विस्तारपूर्वक व्याख्या करता है और उसी पराभक्ति का आदेश देता है, जिसे राधास्वामी मत में सबसे न्यारी भक्ति कहा गया है। राधास्वामी मत किसी मत का खण्डन नहीं करता, क्योंकि वह सनातन धर्म के विकास में सहज भक्ति और सहज प्रेम की अन्तिम पीढ़ी है। इसलिए मेरे मासिक सत्संगों में हर बार नई प्रेरणा और नई दिशा का निरूपण होता है।

5 जुलाई को श्री नारायनदास जी के भानजे फ़कीर प्रसाद के विवाह पर,उसी के घर पर एक विशाल सार्वजनिक सत्संग हुआ, जिसमें बहुत से सत्संगी बाहर से भी आए। बाहर से आने वालों में श्रीमती रुकमिणी गोहिल राजपिपला की महारानी, उनकी विवाहित सुपुत्री मिनाक्षी तथा जम्मू के एक राजपरिवार से सम्बन्धित दामाद भी सम्मिलित हुए। इस सत्संग में होशियारपुर के नये डिप्टी कमिश्नर ***Shri T. C. Gupta*** तथा उनकी पत्नी भी सम्मिलित हुई। उन्होंने बहुत श्रद्धा से सत्संग सुना और बहुत प्रभावित हुए। डिप्टी कमिश्नर तो बहुत आया करते हैं, किन्तु यह एक प्रसन्नता की बात है कि श्री और श्रीमती गुप्ता भक्ति भाव से ओत-प्रोत हैं। सत्संग के बाद भंडारा हुआ। उसी रात को मूसलाधार वर्षा हुई और प्रातःकाल तक चलती रही। मैं 6 जुलाई को प्रातःकाल अपने कमरे में घूम रहा था और हमारा कमरा पानी से भरा हुआ था। मेरी अपनी ही लापरवाही से या किसी दैवी कारण से मेरा पांव फिसला और मैं बहुत ज़ोर से पक्के फ़र्श पर पीठ के बल

गिरा। उसी समय रामकृष्ण टेढा हकीम के सुपुत्र डा.विकास सूद मेरे पास थे। जब वह मुझे उठाने के लिए आगे बढ़े, तो वह भी फिसल गए। मेरी चोट गहरी थी। मैंने उसी समय डा. के परामर्श से दर्द की गोलियां खायीं। सौभाग्य-वश उसी दिन मेरे प्यारे डा. चन्द्र नगेश नेगी मेरे पास पहुंच गए। वह 24 घण्टे मेरी देखरेख करते रहे और दवा-इयां देते रहे। उन्होंने मेरी पीठ पर पुलास्टिक पलस्तर भी लगाया, जिससे मुझे काफी लाभ हुआ।

मैंने यह समझा कि दो चार दिन में चोट ठीक हो जायेगी। मुझे 8 जुलाई को परमदयाल जी महाराज के अमेरिका से आए हुए पोते श्री विक्रम जंग के विवाह पर जाना था। विवाह की तिथि 10 जुलाई थी। निमन्त्रण-पत्रों में यही लिखा था कि मैं ही उस विवाह को सम्पन्न करूंगा और किसी पुरोहित आदि की उपस्थिति नहीं होगी। इस जिम्मेवारी को महसूस करते हुए मैं 8 जुलाई को शाने पंजाब द्वारा देहली पहुंचा। इसमें कोई शक नहीं कि दवाई खाने के बावजूद भी दर्द होता था और मैं बिस्तर से उठ भी नहीं सकता था, लेकिन इस हालत में मुझे मौज मालिक की मस्ती अवश्य मिली। 10 जुलाई को तालकटोरा स्विमिंगपूल के शानदार भवन में विवाह सम्पन्न होना था। उससे पहले मुझे श्रद्धालु श्री धर्मेन्द्र गुप्ता तथा श्रीमती इन्द्रा गुप्ता की सुपुत्री वन्दना के विवाह पर बसन्तविहार भी जाना था। बसन्त विहार में वन्दना था उसके होने वाले पति को आशीर्वाद देकर 1 बजे से पहले मैं तालकटोरा भवन में पहुंच गया।

थोड़ी ही देर में विक्रम की बारात वहाँ पहुंची। लड़की

वाले सभी सम्बन्धी और अतिथि पहले ही मौजूद थे। उन्होंने मेरा बहुत आदर और स्वागत किया। मेरे साथ भाग्य माता जी, आचार्य शब्दानन्द, आचार्य के. पी. वर्मा, श्री पवन शर्मा और श्री भगवान व्यास थे। विक्रम के ससुराल वालों ने बड़ी श्रद्धा से और आदर से सभी को विशाल भवन में बैठाया। तालकटोरा भवन बहुत ही सुन्दर और विशाल है और खूब सजा हुआ है। किस्म - किस्म की बत्तियां और ट्यूब लाइट भवन की शोभा को बढ़ा रही थीं। श्री विक्रम उनके पिता पदमजंग, उनकी माता श्रीमती सरला जंग अमेरिका से आई हुई विक्रम की बहिन श्रीमती रानी तथा उनके पति जिम्मी, विक्रम की छोटी बहन डा. अगम तथा उसके मंगेतर डा. सुरेश अति सुन्दर लिबासों में शोभायमान हो रहे थे। इसी प्रकार, श्रीमती सरला के परिवार वाले, उनके भाई, उनके जीजा जी श्री ज्ञान शर्मा, उनकी पत्नी श्रीमती ललिता शर्मा तथा उनका सारा परिवार बहुत प्रसन्न मुद्रा में और अच्छी - 2 पोशाकों में विवाहोत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे। इतनी देर में दिल्ली के अतिथि भी पहुंच गये, जिनमें से कु. डा. गिरजा व्यास उपमन्त्री सूचना तथा प्रसारण विभाग, श्री कमल चौधरी एम.पी. की पत्नी श्रीमती सुधा चौधरी के इलावा श्रीमती मोहिनी सिंह और मानवता मन्दिर के अध्यक्ष श्री एम. सी. परदेसी भी बड़े उत्साह और उल्लास से इस शुभ विवाह में सम्मिलित हुए। सभी लोग मेरे से विशेषकर आकर मिले। कुछ अल्पाहार के बाद मेरे साथ सभी बाराती और वरवधु का परिवार और अतिथि मंडप की ओर चले। मंडप बहुत सुन्दर बना हुआ था और यज्ञ की वेदी सनातन विधि से बनायी गयी थी।

क्योंकि मुझे ही दोनों वर और वरवधु की ओर से

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

पुरोहित का काम करना था, इसलिए मैने विधिपूर्वक यज्ञ कराया और सप्तपदी करायी। सभी लोग बहुत प्रसन्न थे और मन ही मन में मेरी सराहना कर रहे थे। सनातन विधि से मैंने पाणिग्रहण कराया, जयमाला पहनवाई, सप्तपदी कराई। यह सारा काम केवल 40 मिनट में समाप्त हुआ। सभी ने विक्रम और विक्रम के परिवार को वधू पूनम शर्मा के परिवार को बधाई दी और हम सब लोग फिर उसी भवन के उस भाग में आ गए, जहाँ पर मेजों पर भोजन लगा हुआ था। सभी ने स्वयं ही प्लेटों में भोजन लेकर कुर्सियों पर बैठकर, चलते फिरते अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजनों का आहार भी करते रहे और बातें भी करते रहे। मैं एक विशेष कुर्सी पर इसलिए बैठा था ताकि मेरी पीठ का दर्द अधिक न हो। मेरे लिए श्रीमती सरला जंग स्वयं भोजन परोस कर लायीं। श्री पदम जंग तथा सभी सत्संगी मेरे चारों तरफ खड़े हुए थे। श्री पदमजंग ने आप मुझे सम्बोधित करते हुए कहा, "महाराज! आप इस कष्ट में और बीमारी में विक्रम के विवाह पर लम्बी यात्रा करके आए हैं। हम इस एहसान का बदला कभी भी नहीं चुका सकते। किन्तु मैं यहां पर अपने पिता श्री परमदयाल जी महाराज की एक घटना के विषय में सुनाना चाहता हूं, जिससे यह प्रमाणित होता है कि आप वास्तव में वही फ़कीर बाबा हैं, जिन्होंने आपको अपना उत्तराधिकारी बनाया है। 1973 में मेरे पिताश्री होशियारपुर में मानवता मन्दिर में बहुत बीमार हो गये थे। उनको बोलने की इजाजत भी नहीं थी। वह श्री नारायनदास के कमरे में लेटे हुए थे। मैं और सरला उस अवसर पर भिलाई से आए थे, क्योंकि परमदयाल जी ने हमें कहा था कि वह

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

वाखी के पश्चात हमारे पास भिजाई आयेंगे । जब हम उन्हें श्री नारायनदास जी के कमरे में मिलने गये, तो उन्होंने कहा "पदम दी ग्रेट ! देखो ! मैं बहुत बीमार हूं। मानवता मन्दिर में भी सत्संग नहीं दे सकता । मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकूंगा । क्या पता मैं जिन्दा भी रहूं कि न रहूं ।" मैंने तुरन्त उनसे प्रार्थना की कि "पिता जी ! आप यह क्या कह रहे हैं। आप तो कई वर्षो तक हमारे पास आते रहेंगे । आप विक्रम के विवाह पर भी आयेंगे और बाद में भी।" यह सुनकर पिता जो चुप हो गए।" मानवदयाल जी महाराज आप वो ही तो हैं और विक्रम की शादी पर इसलिए बीमारी की अवस्था में आए हैं और आपने अपना परमदयाल जी के चोले वाला वचन निभाया है।" यह सुनकर मेरी आंखों में खुशी के आँसू आ गए, क्योंकि श्री पदमजंग ने अगाध प्रेम से प्रेरित हो कर यह घटना सुनायी थी। श्री पदम जी की श्रद्धा का भी पारावार नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम शाने पंजाब से दिल्ली से रवाना होकर साढ़े बारह बजे दुपहर को जालन्धर पहुंच गए। दर्द की दवाई खाने के कारण मुझे कुछ आराम महसूस हुआ, इसलिए जालन्धर में एक दो सत्संगियों के घर भी गया और सायंकाल, पाँच बजे के करीब मानवता मन्दिर पहुंचा। क्योंकि चौदह जुलाई को गुरु पूर्णिमा का उत्सव था, इसलिए भारत के कोने २ से सत्संगी बहुत अधिक संख्या में 11 जुलाई से ही मानवता मंदिर में आना शुरू हो गए थे। 13 जुलाई को मानवता मन्दिर के सारे कमरे भर गए, इसलिए उसी रात को भी सत्संग हुआ, जिसमें सत्संगियों ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से लाभ प्राप्त किया।

दूसरे दिन प्रात:काल मैं 5 बजे से ही समाधि ध्यान और स्नान से फारिग होकर तैयार हो गया। कुछ सत्संगी प्रात:काल से ही गुरु पूजा के लिए मेरे निवासस्थान पर आ गए थे। उनसे फारिग होकर मैं 6 बजे से ही सत्संग भवन में पहुंच गया और समाधि में बैठा। सत्संगियों की संख्या बहुत थी, फिर भी वे अनुशासन में रहे। पहले मैंने परमदयाल जी महाराज की आरती उतारी और उसके बाद सत्संगियों ने गुरु पूजा की। आदमपुर के जवाहरजीत सिंह ने गुरु पूर्णिमा के सारे उत्सव की वीडियो फिल्म ली, जो आपको किसी अवसर पर दिखाई जाएगी। गुरु पूर्णिमा का सत्संग केवल मैंने ही दिया, बाकी सभी आचार्य बड़े ध्यान से सत्संग सुनते रहे और मस्ती का अनुभव करते रहे। इस गुरुपूर्णिमा का सत्संग कबीर साहिब के नीचे दिए गए शब्द पर था :--

भाई कोई सतगुरु सन्त कहावे,
नैनन अलख लखावै।
डोलत डिगै न बोलत बिसरे,
जब उपदेस दृढ़ावै।
प्रान-पूज्य किरिया ते न्यारा,
सहज समाधि सिखावै ॥ 1 ॥
द्वार न रूंधे पवन न रोकै,
नहिं अनहद अरुझावै।
यह मन जाय जहाँ लग जब ही,
परमातम् दरसावै ॥ 2 ॥
करम करै निःकरम रहै जो,
ऐसी जुगत लखावै।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

सदा विलास त्रास नहिं मन में,
भोग में जोग जगावै ॥ 3 ॥

धरती त्यागि अकासहुं त्यागै,
अधर मड़इया छावै।
सुन्न शिखर की सार शिला पर,
आसन अटल जमावै ॥ 4 ॥

भीतर रहा सो बाहर देखै,
पूजा दृष्टि न आवै।
कहत कबीर बसा है हंस,
आवागवन मिटावै ॥ 5 ॥

इस शब्द को सुनते ही मुझे स्वयं आत्ममृति हो गयी। मैंने अपने अनुभव के आधार पर पूर्णधनी परमसन्त परमदयाल जी महाराज के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रघट करते हुए और उनके साथ अपने व्यक्तिगत सत्संगों का संस्मरण करते हुए, कबीर साहब के उस शब्द में छुपे हुए उस भक्ति के राज़ म मानो अपने आपको खो दिया। मुझे केवल इतना याद है कि जब कभी मेरा ध्यान सत्संगियों की ओर जाता है, तो मुझे वास्तव में ऐसा लगता कि वे मेरे इष्ट परम दयाल जी महाराज के ही स्वरूप हैं और मैं अपने आपको ही सत्संग दे रहा हूं। मुझे मालूम नहीं सत्संग दो या तीन घण्टे तक चलता रहा। मैं अपनी पीठ की व्यथा को बिल्कुल ही भूल गया, राधास्वामी धुन और आरती के समय मैं सोफ़े से उतर कर मंच पर बैठ गया। मुझे लक्ष्मी का प्रसाद भी देना था, इसलिए मैं लगातार करीब 2 घण्टे तक प्रेम से ओत-प्रोत सत्संगियों को प्रसाद देता रहा।

जब सभी सत्संगी आशीर्वाद ले चुके, मैं मंच से उतरा और धीरे - २ चलकर अपने निवासस्थान पर पहुंच गया। जहाँ तक सत्संग के दौरे और गतिविधियों की सूचना का सम्बन्ध है, इस मासिक सन्देश में यहां तक की सूचना पर्याप्त होगी। जब कभी आप स्वयं इस वर्ष की गुरु पूर्णिमा की वीडियो फिल्म देखेंगे, तो आपको ऐसा महसूस होगा कि आपने स्वयं ही गुरु पूर्णिमा का सत्संग. सुना था। मैं सच्चे दिल से आशीर्वाद देता हूं कि आप अगले वर्ष की गुरुपूर्णिमा तक आध्यात्मिक उन्नति करें और भक्ति में ओत-प्रोत होकर अपने निज स्वरूप को छू जायें। मेरी ओर से आप सबको प्रेममय हार्दिक आशीर्वाद और राधास्वामी।

आपका फ़कीरमय
मानव

❉ ❉

शोक समाचार

हमें दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) निवासी श्री शीतल सिंह जी का आकस्मिक निधन हो गया। उनका सम्पूर्ण परिवार अत्यन्त श्रद्धालु और प्रेमी सत्संगी परिवार है।

मानव मन्दिर परिवार इस दुखद बेला में उनके परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए मालिकेकुल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें और उनके शोकाकुल परिवार को सहन-शक्ति प्रदान करें।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर।

परम संत हजूर परम दयाल जी महाराज के अनमोल विचार

मेरे निजी अनुभव, सार समझ या सार ज्ञान, जो मुझ को अपने जीवन में सच्चाई की खोज के सम्बन्ध में प्राप्त हुए हैं, के आधार पर समझता हूं कि समस्त मानव जाति एक है। जो भी भेदभाव हैं वे केवल विचारों और भावों के हैं। इसका कारण प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक प्रकृति और बाहरी प्रभाव हैं।

भेदभाव व भिन्नता का होना प्रकृति का गुण है। भेदभाव या भिन्नता पर क़ाबू रखने और उनके दुष्परिणामों को रोकने के लिए डर, भय, संयम और कण्ट्रोल की बड़ी आवश्यकता है, ताकि मनुष्य को मुंहज़ोर होने का अवसर कम दिया जाए। इस लिए दो बातों की आवश्यकता है: प्रथम---आत्मज्ञान का खुले रूप से प्रचार किया जाये कि मनुष्य क्या है? जगत् क्या है? यही सच्चा धर्म है कि जिसकी शिक्षा सच्चा हिन्दू धर्म, खालसा पन्थ और सन्तमत (मनुष्य धर्म) देता है। उसके सिद्धान्तों से शरीर, मन और आत्मा में एकत्व प्राप्त होता है। दोयम---ज़ब्त और अदब (संयम शिष्टाचार) की पाबंदी है। मनुष्य सुरत शब्द योग को जारी रखता हुआ सच्चा मनुष्य बन सकता है।

तृतीय राज्य (शासन) धर्म, साम्प्रदायिकता और पक्षपात

से रहित हो और मनुष्य को मनुष्य बनाने में सहायक हो।

यही है इबादत यही दीन व ईमां।
कि काम आए दुनिया में इन्साँ के इन्साँ॥

जो कुछ इस समय हो रहा है वह इस लिए कि हाकिम, मिलिटरी, पुलिस और अदालतों में मनुष्य नहीं हैं, बल्कि हिन्दु, मुसलमान, सिख, ईसाई हैं। ये अज्ञानवश अपने-अपने आदमियों का पक्षपात करने पर बाध्य हैं। इसका फल रक्तपात और अशान्ति है।

मित्रो! आज तुम न सुनोगे, न सुनो। आपकी इच्छा है। मगर सिवाय खालिस इन्सान या उत्तम पुरुष बन कर रहने के और कोई उपाय तुम्हारे सुखी और शान्तिमय रहने का है, न होगा। आध्यात्मिक और राजनैतिक अनुभवी एक महापुरुष गुरु गोविन्द सिंह जो इस देश में प्रकट हुए थे। वे अपने निजी अनुभव के आधार पर कहते हैं :--

राज करेगा खालसा, आकी रहे न कोय।

इस ख़ालसा शब्द का अर्थ सिख जाति नहीं है बल्कि ख़ालिस इन्सान उत्तमपुरुष से है। यह हो कर रहेगा। अब मान जाओ तो अच्छा है, नहीं तो प्रकृति डण्डे मार-मार कर सीधे रास्ते पर लायेगी। जब तक देश अपना आदर्श मनुष्यता---सच्चा मनुष्य बनने का न रखेगा, संयम, नियम, और कंट्रोल के सिद्धान्तों को ग्रहण न करेगा और शासनाधिकार ऐसे ही सच्चे मनुष्य लोगों के पास न आयेगा,तब तक देश में सुख, शान्ति की आशा न रखना।

नारायणदास डोगरा
परमदयाल सर्वहितकारी मानवता मन्दिर,
फ़कीरधाम, सरड़ डोगरी, बरास्ता रक्कड़, ज़िला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश।

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

January 10th, 1993

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur (Pb.) India

honour their tombs. This happens everywhere in the world. Very few people care for their living fathers, but after their death they perform ceremonies, feeding the priests and celebrating their death anniversaries. What is the use of becoming slaves to superstitions and rituals ?

Do not follow the old rut. Stop worshipping the dead and be connected with living persons, living expression, and living reality wholeheartedly. Dead physicians cannot prescribe medicine for you, by uttering a dead name, what can you gain by organizing festivals and free dinners on the graves of the dead ?

If you have a nose, do enjoy the fragrance of the blooming rose flower. You cannot get fragrance from roses made of paper, or by the picture of roses. If you have ears, you should hear the discourses of the living masters, whieh contain a special technique of living happily in the present. The words of the dead cannot inspire your mind. If you possess eyes, you should have the vision of the body of a living Guru. You cannot gain much from the picture or biography printed on paper. Are you dead or living ? If you are dead yau can have contact with the dead. But if you are living, you should behave like a living person. You should have a broader outlook, cosmopolitan mind and universal

awareness. You should never entertain enmity or jealousy against anyone; neither indecision nor bias about religious belief.

In the journal Vigyani, we present all aspects of truth. You may select anyone of those aspects. If your mind is not prepared to accept a particular view, you should forget about it for the present. The proper time will come when you will be able to discern the truth in that view. Truth and Reality are all pervasive.

It has already been said, and let me remind you again, that you should not miss your golden opportunity. The clarion call for departure is being sounded. Everyone of us has to depart. Why should you be a victim to laziness. Is it not ignorance ?

The time is ever changing. Whatever existed yesterday does not exist today. That which you see today will cease to exist tomorrow. That which you regard as truth is only relatively so. The sun shines in the day time. It is true in the day. At night it disappears, so it is unture at that time. The same is the case with regard to religious and educational research. Everbody is proceeding according to his or her own viewpoint, but no one is

looking towards Reality.

Journal Vigyani entertains no jealousy or prejudice against any religion, sect, or institution. It honours the essence and the truth. It does not care for unnecessary and useless pursuits.

Do you want to concern yourself with Reality, or do you want to be confused ? Be practical. The study of books and education is beneficial only when it broadens our outlook, otherwise one should avoid that teaching from books which creates doubts.

Journal Vigyani June 1915

Commentary on Hidayatnama

Yoga of Light and Sound for the seekers

H. H. Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

This world of ours is real. Those who declare it unreal are merely expressing their own opinion. Aspirants or seekers who withdraw their attention from the outside world and concentrate or meditate on their ideal within, do experience some enlightenment and bliss. Being intoxicated with that little bliss for a time, they take this mental image of theirs as real and the outside world as an illusion or unreal. The world may be a mental construct, or an illusion, from their point of view, but that does not prove that the world doesn't exist at all. Even though this world appears to be unreal, a dream, in the opinion of those meditators, yet it is a subject of sight and seeing. People who are involved in worldly or material events can never think that this world is not real. So it is foolish to think that this world is an illusion

from any point of view.

Saints, or the perfect Masters, talk consistently and factually. According to them this world is real as long as we are in the physical body and in the conscious state. This reality, or truth, is called the universal consciousness or Bhuloka. In this state we are aware of the worldly process. However, although human awareness experiences everything of the process of the world, it is not able to find stability in worldly affairs. It meets rejection and failure at every step. Being frustrated, the Surat, or human awareness, is compelled to raise the following questions :-

1. What am I ?
2. What is the nature of this world ?
3. How was the world created ?
4. Why was the world created ?
5. Who is the Creator ?

People who raise such questions are the seekers of knowledge, or Jigyasus. Some, being unable to fulfill their desires in their waking life, go to the refuge of Yogis, or saints, who may help them. Although such people struggle hard to achieve their

cherished goal, they bow down to the Gurus to receive their blessings, only for their worldly successes. Such persons are called devotees, or Bhagtas.

Another type are those who are inspired to engage themselves in helping the needy and suffering people who are oppressed by the troubles of the world. Such great people are known as saints, and they have frequently been the founders of great religions or faiths. They devise a technique by which the masses can be set free from suffering. Lord Krishna, Gautama Buddha, Jesus Christ, and Mohammed are examples of such, in the history of the world.

Swami Shiv Ji Maharaj (Swami Ji Maharaj), an incarnation of the Supreme Person, witnessed the Indian Revolution of the Army for India's Independence in 1857. The cruelties and atrocities of the revolution deeply affected his sensitivities. Since he was a man of compassion and a great lover of humanity, he tried dispassionately to find the causes of the revolution, and came to realize that ignorance of the true meaning of religion, and fanaticism in religions and sects, were to a great extent responsible. People everywhere commit cruelties and atrocities in the name of religion, and certainly that revolution was not free from religious bias.

As a result Swami Ji was prompted to write Hidayatnama : The Yoga of Light and Sound, a a small book, designed to remove the ignorance of the religionists, and also for the innocent people who are influenced by those religionists. He said that the true seekers who want to know and see God and follow the true religion, should associate with the saints. Why did he say this ? Because at that time religious sentiments were rife all over India, hundreds of religious denominations and sects having cropped up among the Hindus and Muslims. Today with more tolerance, religious differences are not as tense as they were just a few decades ago.

It has been observed that a person usually will stay with an idea or thought, once influenced by it, and is not ready to give it up easily until or unless he is influenced by some other thought or idea which is more vital than the previous one. Swami Ji Maharaj reinforced the spiritual belief, predominant among people at that time, of God and religion, naming the Supreme Truth as the "Supreme Master". There is no doubt that Swami Ji did use common religious symbolism of the day to illustrate his point, but his intention was to help ignorant people (whose only defense is religion) to know the Truth, Swami Ji's chief disciple, Param Sant Rai Sahib Salig Ram Ji

Maharaj, says, "Swami Ji examined and expounded the path of union with God and true religion and also maintained the highest status of the Religion of Saints."

Since the worship of God as an Avatara is the dominant religious concept among Hindus, Swami Ji Maharaj named the Truth or Ultimate Reality, the Supreme Master or Ultimate God, so that he might attract the attention of those people who were absolutely dependent on doctrine and ritual. The Master instructed that one should associate with saints, if one is keen to see the Supreme God face to face. The aspirant is advised to gaze at the face of his Master continuously, without the blink of an eye. Actually, this is the best way to concentrate one's mind, which is always busy pondering some problem or other. A saint or a Faqir has a subtle mind and his vibrations will certainly help the disciple to fix his mind at one point. The company or association of saints helps the disciple to become like saints, since no one can ever have the discrimination or the ability to understand the Truth without that fixity of mind.

In an interview, one disciple of Param Dayal Ji Maharaj asked many important questions about the nature of the spiritual search. His answers will help

in that understanding.

Disciple :—Hazur, what is a saint or Faqir ?

Faqir :—A saint or Faqir is one who really lives in the essence of Reality, or in Satloka, the region of Truth. He is absolutely free from anger, jealousy, fear, hatred and the idea of duality. All tendencies (Samskaras) and mental apprehension are integrated in him in his normal state. He has a very stable mind, a stability which is attainable only through strict discipline. Like a deep peaceful ocean, the saint is one who lives his life without being disturbed.

Disciple :—Why are there opposing groups even in the centers, the Ashrams of saints, fighting with one another ?

Faqir :— Unless and until a person reaches the state of sainthood, he cannot be free from defects or deficiencies. So it is quite natural that persons, living in such institutions are not free from the dualities. They may create misunderstandings. But it is best to overlook their faults and continue to benefit from the saints. In the words of Swami Ji Maharaj :—

Sadguru Khojo Ri Pyari,
Jag Main Durlabh Ratan Yahi.

"My dearest aspirant ! Continue your research for a true and perfect master, because he is rare like a precious diamond."

The masses adopt a Guru, mrely on reputation, without making thorough research themselves. That is why they do not find real Gurus. If such rare saints are difficult to find, one should associate with those saints who are on the way to perfection. Only those persons are capable of uniting with God, or Truth, who consider other human beings equal to themselves and hold no jealousy, hatred, or other negative ideas in their mind.

Disciple :—Please explain what is meant by a compassionate gaze.

Faqir :—It is a pity that the average man is confused and caught up by the complexity of language. The compassionate glance is nothing but the merciful attitude which flows like the current of love from the eyes of the master. When this current touches the disciple who is keen to have peace and real happiness, it so affects his mind that he is filled with self-confi-

dence, happiness and bliss. The words of the master are permanently retained in his mind and he applies them in his practical life This is the real meaning of the compassionate glance. The more intense the devotion or desire for peace and bliss is, the deeper is, the effect of the compassionate gaze on the aspirant. Have you ever observed how lovingly a mother gazes on her child ? If the child does not care about the loving glance of his dear mother, he remains blank and empty. But the same glance on that child who is responsive, creates a special vibration.

Disciple :---But, most of the disciples have been associated with their Gurus for a very long time. Why then, have they not attained anything that is granted by a saint ? Also, the Gurus have been engaging their disciples in different kinds of services. Why do they advise some disciples in one way and others in a different way ?

Faqir ;---In fact, a true master knows very well why a special disciple has come to his refuge. Some Gurus, who are keen to recruit as many disciples as they can, do exploit those people who are in trouble. But a true or pefect master never exploits his dear disciples. He loves them and advises them according to their respective backgrounds and capabilities, which

are different for different people. He tells his disciples to be engaged in different kinds of activities, which either help them to fulfill their worldly desires of material things, or to rid themselves of those desires after a good deal of experience. A person can never realize Truth, or attain peace, as long as he is a slave to passions and desires. That is why Hidayatnama clearly says that first a devotee should resign his desires for wealth, prosperity, and family to the Will of God and then go to the saints for guidance. In this way all his problems will be solved. Those who do not follow these instructions take a longer time to resolve their problems. The order of the perfect master and the path suggested by him should be considered as supreme. The seeker would experience peace and bliss by applying the instructions of his master to his practical daily life. In my opinion, obedience to the master is the uppermost pre-requisite for spiritual advancement.

Disciple :---Isn't it true that selfless and pure masters are rare to find ?

Faqir : When you desire something keenly, you surely get it, because of the power of your thought. But most people go to Gurus to obtain blessings for their worldly fulfillment. Some people want wealth, the

others children, still others want health or fame. They think that the Gurus are capable of granting these worldly attainments. Ignorant aspirants do not try to understand the significance of the Religion of the Saints ! In fact, the pure and selfless relationship between the master and the disciple is being largely exploited. "Guruism" has become a very lucrative profession all over the world. Many Gurus are concerned with accumulating wealth and fame and their disciples are equally motivated by worldly desires. So instead of being enlightened and liberated, seekers are more and more involved in material things and thus subjected to the cycle of birth and death. When a Guru who is the true practitioner of The Yoga of Light and Sound, is found by a disciple who is truly desirous of being freed from the spatio-temporal world, then and only then the relationship of the disciple and the master has some significance.

The great saint Kabir remarked, "The people of the world are so ignorant that they do not understand the meaning of devotion to the Guru. Some aspirants insist upon their Gurus to grant them sons, others supplicate the master to remove their sufferings. Some desire wealth or fame. But none seems to be interested in realizing the Truth. All are running after the shadow of trnasitory fulfillment of desires.

Kabir is at a loss to understand what should be done with such blind and ignorant seekers."

I myself did not have a male child. My father and other relatives wrote to Data Dayal Ji Maharaj asking that I be blessed with a son. Data Dayal Ji Maharaj wrote to them, "If you yourself want a male child, you should ask Faqir Chand (me). Only he he has the ability to grant you a son." What a perfect answer this was from a perfect master ! The saints do put an end to man's sufferings—by making him understand the secret of the final Truth.

Disciple :—From your explanation, it appears that the effect of the compassionate gaze of the master is nothing but a sympathy, or compassion, which benefits the seaker. Is that correct ?

Faqir :—Yes, that is exactly so.

Disciple :—Some of your disciples have told that you granted them sons, by giving them fruit or something of yours to eat. With eating your blessed Prasad (food offering) people rid themselves of their terrible, incurable diseases and others became rich and prosperous. If this is true, then it is proven that a saint can do anything, including changing the inner condition of his disciples by controlling their thoughts.

Faqir :—I started my life with a keen desire to realize Truth and, in that search, I left no stone unturned. With my pure intention and selfless motives, I did succeed in my mission. I was never fascinated by so called miracles or miraculous events. In fact, when miracles happened, I paid no attention to them. But when I was given the status of an Acharya, a preceptor, I was surprised to discover that most of the seekers were interested in miracles rather than spiritual development. After my own deep inner enlightenment, I did make some people the focus of my compassion so that the sick were rid of their diseases and the childless were blessed with children. These events certainly prove that the power of thought is great and unlimited. But I want to make it clear that this mental power is effective only for those who are keen to have their desires fulfilled and whose faith is unshakeable. My thought power was effective in some cases, but not in others, because there are certain principles for transferring power, but these principles cannot be applied to all people at all times.

I have come to believe that the spiritual development of a person lies in loving and associating with a perfect master, or a person who is enlightened and practicing the Truth. The love and faith of a

devotee, combined with the practical spiritual life of the master can certainly change the inner condition of the disciples when the compassion of the true saint is invoked.

Disciple :---There are many Satsangees who stay at the Ashram of the saints and associate with them all the time, but the masters seem to have no effect on them. On the contrary, the life and behaviour of some devotees is mean and immoral, even though such disciples are favourites of the Sadguru.

Faqir :---There are two chief reasons for this situation. The first is that there are a large number of selfish people who surround such a saint, who, in fact, have no keen desire or longing for spiritual development at all. They join the Ashram only for the selfish motive of having their worldly desires fulfilled. And so they remain empty. But somehow they do become favourites of the saints, perhaps because the saints are too kind and tolerant and do not see the faults of others. Or, it may be that some so-called masters are not fully enlightened themselves and their own desires for wealth, name and fortune have not been fulfilled so they need such disciples for their own propaganda. But a true saint needs no kind of propaganda and by his association a devotee rises above pleasure and pain and attains

perfect peace.

So one should associate with such great saints, listen to their preaching and obey their orders, for in this way one is sure to attain the cherished goal of one's life. The instructions of a true Guru are never motivated by his personal gain. Obedience to the order of the Guru will always widen one's experience and benefit the seeker.

Let me explain the inner progress of the disciple. Man is in search of the Supreme Being. Generally he is guided by the idea of the method of worshipping which he imbibes from his family. According to the political thinkers, a person needs freedom, the hungry need food, and the oppressed need justice. However, the real need of man is his spiritual development, his union with the Source and Ground, the Supreme Being. The fulfillment of this need fulfills all others.

In explaining the levels of internal experience, I want to assure everyone that what I describe is completely based on my own inner experience. I do not claim to be infallible. If someone disagrees with me and his experience is more comprehensible than mine, he or she can guide me. As I have experienced them, the spiritual levels known to the

saints are :

1. Shivanetra, or the third eye.
2. Sahesradal Kamal, or thousand-petalled lotus.
3. Trikuti, or Trinity.
4. Sunn, or vacuity.
5. Mahasunn, or endless space.
6. Bhanwargufa, or whirlpool cave.
7. Sataloka, or the Region of Spiritual Light, or Truth.
8. Alakhaloka, or the Region of the Invisible Supreme Being.
9. Agamaloka, or the Region of the Unfathomable Reality.
10. Anamiloka, the transcendental and nameless Being.
11. Radhaswamidham, the Final Abode of the Supremely Compassionate Self.

The inward experience of the stages from the third eye to endless space can be experienced by those aspirants who undertake the inward journey, but still have not gone beyond the stages of duality. But highly developed seekers know that these so-called visions and phenomena are nothing but the creation of

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

their own thoughts and Samskaras, or tendencies. People living on the intellectual level believed that they have attained the Supreme Truth and indeed do enjoy mental visions and are satisfied with transitory mental bliss. However, such people still suffer from the vicissitudes of life. If people really wish to attain knowledge of Ultimate Reality and arrive at eternal bliss, they must ascend to the higher stages, attainable through the path of love and devotion. The Religion of the Saints advocates taking the inward journey, to absorb one's Surat within one's own Self.

The Description of the Thousand-Petalled Lotus

When a man has a keen desire to achieve something, he is led to make a serious search for it. Since his Pure Self, or Surat, concentrates itself within, the urge generates numberless thoughts and suggestions to fulfill that desire, and a wave of thoughts is generated. This state is called pure Light, or the thousand-petalled Lotus, whose one petal generates thousands of rays. That is, one thought generates thousands of others and those thoughts actually begin to create their own constituents or plans.

Your own mind is the thousand-petalled Lotus. Numberless waves of thoughts arising from it are

responsible for the inventions of science and the development of arts, crafts and technology. Just as your mind creates your own world, similarly the Universal Mind generates waves of thought and carries on its own creative activity. Just as your mind goes on creating new constituents, by generating unnumbered forms, thoughts and concepts, similarly, the Universal Mind generates unnumbered mental constituents, which continuously create and destroy the physical world. Whatever exists outside the cosmos exists within you. In other words, microcosm is macrocosm. So the gaze within one's own self allows one to understand and experience the external game of the world.

As long as a person is confined to the mental level, he continues his enjoyment and stays contented at this plateau. But when the inner experience takes him farther, he begins to understand the nature of mind, and his pure Self, or Surat, is established firmly. It no longer is carried away by the currents of thoughts.

The currents of thoughts have colours and forms because they are constituted by the five subtle elements of earth, water, fire, air, and ether. And so one sees a variety of internal colours, referred to as

studies in themselves. But here, we are concerned mainly with man's efforts to understand "Truth". which is eternal, although it appears in varied forms, in different relations and combinations, in varying degree and dimension, in the physical, mental intellectual and spiritual experiences of man.

The gradual progress of human knowledge in the fields of science, religion and philosophy, which seems to be bringing man nearer the whole truth, is hinting at the integration of all the specialized branches of knowledge into one organic pattern, the Eastern concept of 'unity in diversity'

There is no doubt that specialization, which is the recent development n science and technology, has been of tremendous practical use to man. The present progress of culture and human society, the growth of social, political and cultural institutions, could not exist, without the specialization of research. Because of specialization, contemporary society has the advantages of technology for a happier life, free from want, hunger and disease. Because of specialization even the average man in today's affluent society has all the amenities of comfort and ease. But unfortunately the same specialization has created so many problems and there is urgent need to co-ordinate and

compare the discoveries of all the particular disciplines and io disseminate the findings through public communication media.

Man is very slow in recognizing that all the ways of search for truth converge at one point. The glimpses of the Eternal Truth, whether experienced by scientists, philosophers, sages, or mystics, have again and again indicated that the Ultimate Truth is One. The physical, mental, ethical, metaphysical and spiritual realms are intimately interdependent and their truths are ultimately unified. Cosmos and man, God and individual soul have intimate relation with each other.

Plato's greatest contribution is the classification of the relationship between the spatio-temporal world and the Supreme transcendent God. For him soul is like a two-faced mirror. On the one hand, it reflects the world of objects and on the other the transcendental reality, God. A true philosophy can only arise from spiritual experience, because spirit is the essence of all existence. The term spirit is applied to the infinite basis, both of human personality and of the cosmos. All great philosophers, sages and saints have had access to the power of the spirit.

Plotinus's cosmology reveals the presence of in-

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

dividual differences and plurality of souls in the Spatio-temporal world, emanating from one God, Who is Himself infinite and undifferentiated. This One is also the Supreme God, identified with the light above light. The human soul individuates from the World Soul, which itself is an emanation from the infinite God. Before being incarnated the soul is in a State of constant contemplation of the eternal Nous (Mind), and has complete knowledge of the God. Having separated from God and descended into the material world, it is now on its journey back to God and passes through various births in this ascent towards its Supreme Source. In the Stase of ecstasy the soul is raised above all limitations and merges with the Soul of God. God is the final and efficient cause of the world. Reason is finite and no intellectual exercise can comprehend completely, the nature of an infinite God

Reason can neither prove, nor disprove the concept of God as the Final Cause, any more than it can resolve whether the hen or egg is the first cause.

Monthly Message

OF

H. H. PARAM SANT HAZUR MANAV DAYAL
Dr. I. C. SHARMA JI MAHARAJ

My dearest Ownselves,

Radhaswami and Blessings of the Supreme Compassionate Lord.

The largest number of the Satsangis had gathered in Manavta Mandir in the Monthly Satsang of the 31st May 1992 because I had been on Satsang tour for a full Month. The daily Satsangs during the month of June were also effective. Most of my time was spent in writing. A brief biography of Param Dayal Ji Maharaj was prepared in Hindi as well as in English. In the same manner, the Eng'ish version of Bhagavadgita in verse, from the point of view of Sant Mat, is also ready for going to press. This book will be useful for the English readers and especially in the West. In the same manner the English translation of the Hindi book "Miraculous Faqir Baba Beyond

Miracles", has also been completed. Ach. Chhabi Nath Ojha has translated this book. He has spent a lot of time and made relentless effort. "Sat Sanatana Dharma" authored by Param Dayal Ji Maharaj has been revised and published from Jalandhar. A nominal price of Rs. 20/- has been fixed as a donation for the purchase of this valuable book. My keen desire has been that this book should be supplied to all the sincere seekers, free of charge but due to the inflation in the prices of paper and printing it cannot be supplied free of cost. This book has been in great demand for the last several years. This is, in fact, a collection of Param Dayal Ji Maharaj's lectures which were delivered on the occasion of the Kumbha fair of Ujjain in 1958. He had himself got them published in the form of a book. In this work he has proved on the basis of his own experience that the Sanatana Dharma, which is now called Hindu Dharma, and the Radhaswami Faith are one and identical. Those who call themselves the followers of Radhaswami Faith and do not know the truth of Sanatana Dharma, are guilty of turning Radhaswami Faith into a narrow temporal religion.

The true teachings of essential Radhaswami Faith are made available in the Manavata Mandir and

Satsangs are delivered on the basis of experience. Swami Shiv Dayal Ji Maharaj, the founder of Radhaswami Faith has said :

> 'Light and Sound are experiential expression ;
> Commoners are suffering from great illusion.'

Surat or Light is the individuated self of man whereas sound stands for the Supreme Being. Their identity can be attained by the practical application of the technique of Light and Sound.

There is no doubt that Swami Shiv Dayal Ji Maharaj was the Incarnation of the Supremely Compassionate Divine Person, and after experiencing the identity of man and God by practicing Radhaswami Yoga--the technique of Light and Sound,at the highest level, he made this technique available in a very simple form for the average person to attain the highest Supreme abode. He has himself explained the word Radhaswami in which he has expressed that the Light in the form of Radha and the Sound in the form of Swami are present in each and every individual. Every individual can attain the highest experience of Radhaswami State by the practice of the Yoga of Light and Sound, under the guidance of the Perfect Master. That is why he has stated in the

above verse that Light and Sound (Surat and Shabda) are the two aspects of the same experience under the guidance of the Supreme Master. It is a grave blunder to consider them to be separate. I I expounded this very truth in a simple language during my Satsangs in the month of June. That is why people in larger numbers are taking keen interest in the weekly Satsangs.

Param Dayal Ji Maharaj used to say "Most satsangis come to the satsang only for the fulfillment of their worldly desires. No one is desirous of learning the higher spirituality which I want to impart." Therefore he had stopped initiating people. The fact is that the highest Name of the Supreme Being, which is given at the time of initiation for inarticulate repetition in the Radhaswami Faith, is perfect and faultless. The Supreme Being, for whom there is a great urge to meet in the minds of the aspirants, is in reality beyond all colors and forms and even beyond the states of Name and Namelessness. It is the Pure which, in the words of Swami Ji Maharaj, has been designated as "Nothing." So long as an aspirant does not attain the state of "Nothing", so long as he does not have the urge of desirelessness, he can never experience the Radhaswami state. The True Master takes the aspirant towards this Pure State gradu-

ally and makes him attain the state of desirelessness. If a Guru who delivers Satsang, does not have this highest experience, and if he is not free from desires and longings, he will never cross the ocean of Spatio-temporal world himself, nor will the satsangis attain God.

The monthly Satsang of June was held on the 21st and was largely attended by the Satsangis from far and wide. They had started pouring in, at the Manavata Mandir, by the afternoon of the 25th June. Consequensly, the evening Satsang of the 25th was attended not only by a large number of aspirants, but it also absorbed them deeply during the discourse and many of them were almost in trance. After the Satsang many of them felt as if they had dipped into an ocean during the satsang. A night satsang is always delivered on the eve of the monthly Satsangs. Quite a large number of satsangis from outside arrive for the monthly satsang, by the afternoon of Saturday. The names of the satsangis who are regular in attending these satsangs need special mention. These are the satsangis from Batala, Abohar, Lalroo, Doraha and Ludhiana etc. I appreciate them without any notice because I find them in most attentive and cheerful mood during the nightly discourses. Their absorption and devotion influences other satsangis. From this

point of view Mr. Bhagat Ram of Dulehar and Mr. Mukand Singh of Ludhiana are deeply devoted and have unfathomable faith. The Monthly Satsang was held the next day in the larger auditorium. This auditorium was also full with the result that many satsangis were also accommadated outside the auditorium.

Monthly discourse is not only the gist of the daily and the weekly discourses but it has also the uniqueness of abundance of devotion which creates an atmosphere beneficial to all the participants. The monthly satsang also has a special significance for me. Every time the monthly message in verse written by Swami Shiv Dayal Ji Maharaj is read out. He had written these verses dedicated to each month with a view to point out how each month of the year brings a special spiritual message and can lead aspirants to engage in the Yoga of Light and Sound. For instance, the month of Jestha, which corresponds to June, is extremely hot. Swami Shiv Dayal Ji Maharaj has said that the aspirant should have a very strong longing like strong heat of the month so as to entertain deep love and devotion for the Perfect Master. It so happens that my discourse is every time new even though the verse concerning a particular month is old and the same. The poetry of Swami Shiv Dayal Ji

Maharaj is not ordinary. On the contrary, it uncovers the eternal Truth which has been expounded in the hymns of the Vedas, the statements of the Upanishadas and the verses of the Bhagavadgita which give new inspiration every time they are recited. The expressions of the Perfect Master and Perfect Saints are said to be eternal and immutable because the truth expressed in them always remains the same and unchanged inspite of the transformations due to changes of time. That is why their expression, which is the constant flow from the unfathomable source called Apta Vachana, are the expression of spiritually authoritative Masters. That is why the expressions of Perfect Persons cannot be easily understood by an average person. There is always the need of a Perfect Person in order to impart the significance of and to apply the hidden truth to practical life. That is why in Radhaswami Faith acceptance of the Perfect Master has been considered to be the first step in the triune of the Sadguru (Perfect Master), Satsang (association with the Perfect Master),and Satnam(practice of concentration or meditation under the Truth imparted by the Perfect Master. When the great Saint Kabir says that we should go to the emporium of the Perfect Master in order to get perfect knowledge and intelligence, he does not mean to say that the knowledge

novel arrangement. I made the bride and the bride-groom garland each other and performed the rituals including Saptapadi to be taken by the bride and the bride-groom together, and exchanging the vows thereby. All these functions were completed within half an hour.

Next day I returned to Hoshiarpur by Shan e-Punjab via Jalandhar arriving in Jalandhar at 12-30 p. m. I had some relief because of the pain killers. I also visited the homes of some satsangis in Jalandhar and arrived in Manavata Mandir at 5 p.m.

On the 13th July all the rooms of Manavata Mandir were full on account of the satsangis who had come to participate in the function of Guru Purnima, the full-moon day dedicated to the Guru. On the 14th morning I went to the satsang auditorium at 6 a.m. and sat in meditation. The people were disciplined. A Video film was taken by Mr. Jawahar Jit Singh of Adampur. It will be shown to the satsangis at the proper time.

This much of information about the satsang and the activities is enough so far as this monthly message is concerned.

With these words I send you my blessings of this month and wish you secular peace and spiritual Pefection.

Radhaswami.

Yours in Faqir
Manav

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परम सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।।

BOOK POST

Regd No. 26265/74
MANAV MANDIR

JAN. 10th 1993
PB HSP—5

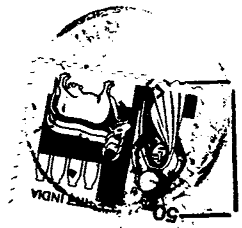

Address

976 Sh. Shinde Vithal,
H/E S/o Arjan Rao Gouligu‹ a
Post & Tq Banswada.
Distt. Nizamabad.(AP).

From :

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD.
HOSHIARPUR. 146 001
PHONE : 22639

Shiv Dev Rao Press Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)